अन्तरनाद

लेखक

पू० मुनिराज श्री भद्रगुप्तविजयजी म० सा०

अनुवादक

श्रीयुत चन्दनमल लसोड *M A*

रतलाम

श्री विश्व कल्याण प्रकाशन,

जयपुर की हिन्दी साहित्य की पंच वर्षीय यात्रा के अन्तर्गत

पांचवें वर्ष का द्वितीय पुष्प

पंच-वर्षीय योजना की १८वीं किताब

प्रकाशक

श्री विश्वकल्याण प्रकाशन

आत्मानन्द जैन सभा भवन

घी वालों का रास्ता,

जयपुर-३

मानद मंत्री

हीराचन्द वैद
पारसमल कटारिया

वि० सं० २०२९, मगसर

मूल्य २ रुपये

प्रथम आवृत्ति. १०००

मुद्रक:
अजन्ता प्रिन्टर्स, जौहरी बाजार,
जयपुर-३०२००३

प्रकाशकीय

निवेदन करते अति आनन्द होता है कि श्री विश्वकल्याण प्रकाशन जयपुर की पंचवर्षीय योजना पंचमवर्ष में प्रवेश कर गयी है। पाचवें वर्ष की यह दूसरी किताब है।

पंचवर्षीय योजना में अब मात्र शेष दो पुस्तकें प्रकाशित करनी शेष रहीं है अब

१ लव-कुश [जैन रामायण का छठ्ठा भाग]

२ रामनिर्वाण [जैन रामायण का सातवा भाग]

ये दो किताबें इसी वर्ष में प्रकाशित हो जायेंगी। इस प्रकार इस वर्ष के अन्त तक पंचवर्षीय योजना सपूर्ण हो जायगी।

राजस्थान, तामिलनाडु, आन्ध्र, मैसूर, बम्बई व मध्यप्रदेश की हिंदी भाषी जैन जनता ने इस योजना को सफल बनाने में सहयोग प्रदान किया है।

पूज्य गुरुदेव श्री भद्रगुप्त विजयजी म० सा० की २० किताबों की यह सीरीज अति लोकप्रिय बनेगी। आपका चितनपूर्ण रसपूर्ण साहित्य जन-जीवन की उन्नति में सदैव प्रेरणादायी बना रहेगा।

जयपुर, २६, जनवरी, १९७३ मानद मन्त्री

अर्हनम-

यह क्या है ?

आपके पास सम्पत्ति का ढेर होगा, फिर भी चित्त अशान्ति से अस्वस्थ्य होगा । शरीर निरोग और तन्दुरुस्त होगा, फिर भी तुम्हारा मन चिन्ताओ से व्याकुल होगा; कुटुम्ब तुम्हारा विशाल होगा, फिर भी हृदय क्लेश अनुभव करना होगा। सत्ता के सिंहासन पर तुम विराजमान होगे, फिर भी अन्त.करण संताप से जल रहा होगा, तुम्हे शान्ति, व्यवस्था, प्रसन्नता और शीतलता की चाह होगी ।

भला ! सम्पत्ति, शरीर, कुटुम्ब अथवा सत्ता का सिंहासन तुमको शान्ति देगा ? सम्पत्ति या सत्ता ने किसी को मन की शान्ति दी हो, ऐसा तुमने देखा या सुना है ? तो फिर तुम शान्ति की खोज मे सम्पत्ति सत्ता के पीछे कैसे दौड़े चले गये ? क्यो सारी जिन्दगी इन भौतिक सुखो के पीछे बरबाद कर डाली ?

स्थिर बनो, महानुभाव ! अब स्थिर बनो ! भागते न रहो। रुको और विचार करो······· तुम कौन हो ? किसके पीछे भागे जारहे हो ? कहाँ जा पहुँचोगे ? अपने भविष्य का विचार करो।

यह लिखा है, मैंने अपने वाचन और चिन्तन के लिए। अभी तक मैंने इसे अपना मानकर रखा था आज अब यह 'अपना' बन रहा है अपने को यह परमकृपालु परमात्मा से मिला है परमपिता की ओर से मिला यह मूल्यवान् दान है। इसका सदुपयोग करके अनादि दरिद्रता को दूर करना है

जोधपुर (राजस्थान)
दिनांक २८ फरवरी, १९७२ —मुनि भद्रगुप्तविजय
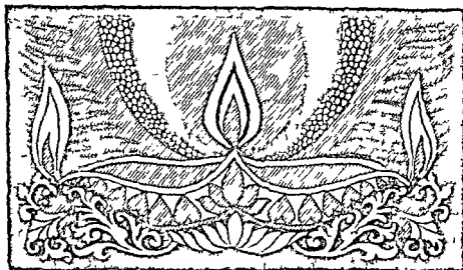
प्रस्तावना

'ज्ञानियो ने ससार को दु:खमय कहा है। निःसन्देह वह दुःखमय है, परन्तु अपनी दूपित दृष्टि, कुत्सित प्रवृत्ति तथा अवांछनीय व्यवहार से मनुष्य ने उसे और भी अधिक दु खमय बना लिया है। सुख की झूठी कल्पना एव मिथ्यामोह के फेर मे पडकर 'कस्तूरी मृग' की तरह उसने अपने 'आन्तर' के अनन्त ऐश्वर्य तथा शक्ति को भुलाया ही नही, उसे झुठलाया भी है। परिणामतः 'जल बीच मीन प्यासी' की भाँति विपुल सुख-साधनो एव सम्पन्नता के बीच भी मानव आज अतृप्त, अशान्त और दुःखी है। लेकिन यदि वह 'बाह्य' जडसाधनो मे सुख ढूंढने के बजाय अपने चेतन 'अन्तर' मे झाँके, उसके 'नाद' को सुने-पहिचाने तथा अपने विचार, वाणी एवं व्यवहार मे तदनुरूप परिवर्तन लावे तो, निश्चय ही सुख-शाति की उसकी चिर-अभिलाषा पूरी हो सकती है, यही वह शाश्वत सत्य है, जिसका प्रकाशन पूज्य मुनिराज श्री भद्रगुप्त विजयजी महाराज ने विविध दृष्टियो, प्रसंगो और शैलियो मे अपने इस 'अन्तरनाद' के माध्यम मे किया है।

'स्वान्त:सुखाय' (उनका स्वान्त· सुख 'परजनहिताय' का विरोधी नही, बल्कि उसी का प्रतिरूप है) आत्म निवेदन की व्यावहारिक शैली मे प्रस्तुत 'अन्तरनाद' सचमुच पूज्य मुनिराजश्री के 'अन्तर' का 'नाद' है—आत्मा की आवाज है, आत्मावलोकन एवं

मथन का अमृत है, अनुभव और ज्ञानका सार है। उसमें न पाण्डित्य प्रदर्शन का मोह है, न तर्कों की भूल भूलैया और न शाब्दिक विल वाड ही। सरल-सरस भावपूर्ण शैली मे विरचित प्रस्तुत पुस्तिका उनके कुशल लेखक का ही प्रमाण नही है अपितु उदारदृष्टि एव सरल निर्मल अन्त करण का प्रतिबिम्ब भी है।

दार्शनिक सन्त के रूप में विश्रुत पूज्य मुनिराज श्री भी सन्तो की उसी परम्परा मे आते है, जिनके बारे मे कहा गया है—

'या निशा सर्वभूताना तस्या जागर्ति सयमी' अपनी अध्ययन मनन और चिन्तनयात्रा मे जिस सत्य का साक्षात्कार उन्होने किया 'अनहनाद' उसी का प्रकाश है। अत यह उनकी 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' की प्रवृत्ति का नही, सत्यान्वेषण तथा 'परजनहिताय' की कल्याण-कामना का द्योतक है। वह थोथा उपदेश नही है बल्कि स्वानुभूत सत्य और महाराजश्री के नियमित सयमित जीवन का प्रतिबिम्ब है।

परन्तु 'उसको' सिद्धान्त या धर्मग्रन्थ की श्रेणी मे राय देना भी गलत होगा। धर्म विशेष के सिद्धान्तो का प्रचार-प्रसार करना, उसका उद्देश्य नही है। वह धार्मिक मताग्रह और कर्मकाण्ड की जड प्रक्रिया से दूर सत्यान्वेषण का एक कल्याणकारी प्रयत्न मात्र है। जिसमे ससार के स्वरूप का परिचय, दुःखो के कारणो का तर्कयुक्त विश्लेषण तथा उनसे मुक्ति पाने के उपायो का निर्देश है। निश्चय ही वह जिज्ञासु पाठको को विचार की एक नई दिशा, कार्य-व्यवहार की एक नई शैली और जीवन का एक नया आधार प्रदान करेगी।

दो दजन से भी अधिक पुस्तको के प्रणेता के रूप मे ख्याति प्राप्त पूज्य मुनिराजश्री की लेखनी मे ताकत है, सम्प्रेषण का

कौशल है, बुद्धि और हृदय के समन्वय के साथ अपनी बात को प्रभाव शाली ढग से कहने की अपनी एक विशेष शैली है; जो बरबस मन को मोह लेती है। मूल-गुजराती मे प्रकाशित यह कृति पुस्तक-प्रकाशन की उनकी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत हिन्दी भाषी क्षेत्रो के जिज्ञासु पाठको के हितार्थ हिन्दी मे भी प्रकाशित की गई है। पाठक उससे लाभान्वित हो और जीवन मे सुखशान्ति प्राप्त करे, इसी कल्याण कामना के साथ महाराजश्री के प्रति इस पुस्तक की प्रस्तावना लेखन का अवसर प्रदान करने हेतु अपनी विनम्र कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए विराम लेता हूँ।

विनीत

चन्दनमल लसोड़

कहाँ क्या है ?

१ मै क्या करूँ

हे परम पिता   हे परम कृपानाथ!

अनादिकाल से संसार में भटकता भटकता मैं आपके द्वार पर आया हूँ नाथ! मुझ पर एक दृष्टि डालिये प्रेम की करुणा की दृष्टि। मेरे देव! मैं आपकी शरण स्वीकार करता हूँ आपके चरणों में मैं अपना सर्वस्व अर्पित करता हूँ मेरी रक्षा कीजिये

अब मैं आपकी ही शरण में हूँ आपको छोड़कर मैं कहीं नही जाने का मेरी आत्मा की सारी जवाबदारी मैं आपको सौंपता हूँ

बताइये मेरे स्वामी! अब मैं क्या करूँ? आप जो भी कहें, मैं करने को तैयार हूँ।

२. भावना

भावनाओ से भावित हुए विना चित्त की परमशान्ति का अनुभव नही किया जा सकता। ज्ञान से, शास्त्रज्ञान मे विद्वत्ता जरूर प्राप्त होती है, परन्तु भावना के विना ज्ञान का रसास्वादन नही किया जा सकता।

भावना कभी पाव-आधा घण्टा भा लेना ही काफी नही है। भावना तो जीवन के प्रत्येक प्रसग पर भाना होगा। मन के प्रत्येक विचार को भी भावना द्वारा भावित कर देना होगा। फिर देखो कितना आनन्द आता है!

जीवन के भिन्न-भिन्न प्रसंगों पर किस प्रकार और क्या-क्या भावना भाना चाहिये, उसकी रूप-रेखा मै यहाँ बताता हूँ। बताना मेरा काम है……उस पर अमल करना तुम्हारा!

३. अनित्य

तुम्हारा उसके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था। विश्वास भी उस पर तुम्हारा पूरा था, परन्तु आज उसने तुमसे अपना नाता तोड लिया विश्वासघात किया इसीलिये न तुम दुखी हो इसीलिये न तुम्हारे चित्त म भारी अशान्ति छा गई है ?

ऐसा क्या हुआ ? तुम दुखी क्यो हो गये ? क्या तुम यह मान बैठे थे कि उसके साथ तुम्हारा सम्बन्ध कभी टूटने वाला नही था ? क्या उसके साथ तुम्हारा स्नेह सम्बन्ध नित्य था ?

अच्छी तरह समझ लो कि इष्ट व्यक्ति के साथ का हमारा सम्बन्ध अनित्य है वह एक न दिन अवश्य ही टूटेगा । जो अनित्य है, वह यदि अपने स्वभाव का अनुसरण करे, तो इसमे दुख किस बात का ?

४. संयोग-वियोग

उसकी मृत्यु हो गई। उसकी देह पड़ी रह गई ... वह स्वर्ग चल दिया ...

तुम विलाप मत करो ... शोक मत करो। उस पर तुम्हारा राग था, गाढ स्नेह था, यह सत्य है परन्तु यह न भूलो कि उसके राग में तुम यह भी भूल गये थे कि 'संयोग का कभी न कभी तो अन्त आना ही है।'

संयोग नित्य नहीं, अनित्य है। इसलिये संयोगजन्य सुख प्राप्त करने की लालसा छोड़ दो, क्योंकि सभी दुःखों का जन्म संयोग से ही होता है।

रात्रि में सोते समय प्रतिदिन अपने समस्त सांसारिक सम्बन्धों का त्याग कर दो। समस्त सम्बन्धों की अनित्यता का विचार करो ... बस फिर प्रिय व्यक्तियों की मृत्यु तुम्हारे हृदय में शोक ... दुःख नहीं होगा।

५ सम्पत्ति

तुम्हारे पास सम्पत्ति है। इस सम्पत्ति को तुमने क्या मान रखा है—नित्य या अनित्य ? यदि नित्य माना है, तो यह तुम्हारा भ्रम है। जरा सोचो तो कि यह सम्पत्ति किसके पास हमेशा स्थिर बनी रही है ? बड़े बड़े राजा-महाराजाओं और सेठ-साहूकारों की सम्पत्ति भी चली गई और सम्पत्ति को नित्य समझकर सँभाल रखने वालों को धाड़ें मार-मार कर रोना पड़ा है।

सम्पत्ति अनित्य है। सम्पत्ति की तरफ जब जब तुम्हारी दृष्टि जाय, तब-तब तुम विचार करना कि—'यह अनित्य है, एक दिन जाने वाली है।' इस विचार से सम्पत्ति में तुम्हारी आसक्ति नहीं होगी। इतना ही नहीं, बल्कि कदाचित् सम्पत्ति चली भी जाय तो भी तुमको उसका दुःख नहीं होगा।

साथ ही, सम्पत्ति को अनित्य एक दिन जाने वाली मान लेने से उस सम्पत्ति का सात क्षेत्रों में सदुपयोग करके पुण्यानुबन्धीपुण्य उपार्जित करने की भी बुद्धि जगेगी।

६. आरोग्य

तुमने सोचा तक न था कि तुम्हारे शरीर मे ऐसे रोग घर कर लेगे ! अभी कुछ महीनो, वर्षो पहले तो तुम्हारा शरीर निरोग था · और उसका तुमको आनन्द भी था ·

तुम रोगो को दूर करने का प्रयत्न करते हो · दवाइयाँ लेते हो · अभक्ष्य दवाइयों का भी सहारा लेते हो · फिर भी रोग मुक्त नही हो पाते·······तुम अशान्त, विवश और दीन बन गये हो ··

मन की ऐसी स्थिति मे भी क्या अब तुम मानसिक स्वास्थ्य, समाधि प्राप्त करना चाहते हो ? यदि हॉ, तो तुम अपने विचारो मे परिवर्तन करो और सोचो—

"आरोग्य अस्थिर है। एक समान आरोग्य कभी किसी का नही रहता · ····सब कुछ ठीक चल रहा होता है कि तभी अकस्मात् रोग आ घेरते है·····ससार की यह एक अनिवार्य स्थिति है ··· तो फिर मुझे इसके लिए दु खी क्यो होना चाहिये, अशान्त क्यो बनना चाहिये ?"

अब तो परमात्मा से ऐसे आरोग्य की प्रार्थना करो कि जो अक्षय है ··· उसको प्राप्त करने के लिए प्रबल पुरुषार्थ भी करो।

७ यौवन

याद रखो यौवन का यह जोश हमेशा कायम रहने वाला नही है। यौवन अनित्य है। इसको हमेशा बनाये रखने का व्यर्थ प्रयत्न मत करो।

यौवन तो एक दिन चला जायगा, परन्तु यौवन के उन्माद में की गई पाप लीलाएँ ऐसे ही जाने की नही वे आत्मा मे जम जायेंगी, जिनका दारुण फल तुमको भवान्तर में भुगतना पड़ेगा।

अनित्य यौवन में से अक्षय यौवन प्राप्त कर लेने का पुरुषार्थ कर लो। वह पुरुषार्थ चार प्रकार का है —

(१) ब्रह्मचर्य का पालन
(२) तप और त्याग
(३) देव गुरु धर्म की सेवा
(४) सेवा-परोपकार

चार प्रकार का यह पुरुषार्थ यदि तुमने यौवन काल मे कर लिया तो बस ! तुमने यौवन को अक्षय बना लिया फिर इस चमड़ी और हड्डी का यौवन चला भी जाय तो भी तुमको दुःख नही होगा।

८. शरण

जीवन में तुमको क्या कभी कोई दुविधा पैदा नहीं हुई ? कोई आपत्ति नहीं आई ? जब तुम अपनी दुविधा या आपत्ति को दूर करने में असमर्थ हुए तब तुम किसके पास गये ? किसकी शरण ली ?

दु:ख अथवा आपत्ति की दुविधापूर्ण-स्थिति मे क्या कभी तुमने जिनेश्वर देव की शरण ली ? तुमको हृदय में क्या यह दृढ श्रद्धा है कि श्री जिनेश्वर भगवन्त ही इस संसार में सच्चे शरण है ? इनके सिवाय ससार मे कोई भी सच्ची शरण दे पाने वाला दूसरा नही।

भाग्यवन्त ! भ्रम मे मत भटको ! कल्प-वृक्ष को छोडकर बबूल की शरण मे जाने की मूर्खता न करो। निर्णय करो : परम कृपालु परमात्मा के सिवाय मैं किसी को भी शरण ग्रहण नही करुँगा..........वे ही मेरी शरण है......।

९. मैं आज सनाथ

तुम अशुभ विचारों से छुटकारा चाहते हो? चित्त में अपूर्व अध्यवसायों की प्राप्ति की कामना है? यदि हाँ, तो परम कृपालु जिनेश्वर भगवन्त की शरण स्वीकार करो।

भगवन्त की शरण स्वीकारने का अर्थ है, अपने लिए की गई उनकी समस्त आज्ञाओं को पालन करने के नियम में बध जाना।

"मेरे नाथ मेरे रक्षक त्रिभुवन नाथ हैं। मैं निर्भय हूँ। पापपूर्ण विचार पाप कर्म मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते मैं आज सनाथ हुआ हूँ।"

बस, जैसे ही क्रोध, मान, माया अथवा लोभ का कोई विचार मन में प्रवेश करने लगे कि भगवन्त के नाम का स्मरण करना चाहिये आँख बन्द करके इनकी देह का स्मरण करना चाहिये। दुष्ट विचार भागे समझो।

लेशमात्र भी दीन मत बनो। तीनों जगत् के नाथ जब अपने सिर पर हैं, तो फिर समझो कि मानो सब कुछ अपने को प्राप्त हो ही गया है

१०. शरणागत मैं

"अरिहंते सरण पवज्जामि
सिद्धे मरण पवज्जामि
साहू सरण पवज्जामि
केवलि पन्नत धम्म सरणं पवज्जामि ।"

रोज सवेरे और रात को सोते समय इस प्रकार से शरण स्वीकार करने की प्रतिज्ञा करो "मे परमात्मा का शरणागत हूँ ।" यह भाव तुममे परमात्मा के प्रति दृढ अनुराग पैदा करेगा । फिर संसार के प्रति तुम्हारा राग फीका पड जायगा । जैसे-जैसे परमात्मा के प्रति राग बढ़ता जायगा, वैसे-वैसे विषय-सुख से राग निवृत्त होता जायगा ।

जन्म-जरा-मृत्यु से भयकर बने हुए इस ससार मे परमात्मा के सिवाय आत्मा की रक्षा कर सकने वाला दूसरा कोई नही । वे ही शरण है, वे ही तारक है और वे ही बोधक है……

११ सब से भिन्न तू

तुम यदि अपना हित करना चाहते हो तो इसके लिए दूसरों का मुँह क्यों देखते हो ?

संसार में तुम अकेले पैदा हुए थे और मरोगे भी तुम अकेले ही । अब तक अपने पाप पुण्य के साथ तुम अनंत भवों में भटकते रहे हो अब इस परिभ्रमण का अंत भी तुम्हें ही करना है ।

तुम दूसरों की चिन्ता इतनी अधिक न करो कि तुम्हारा यह दुर्लभ मानव जीवन व्यर्थ ही चला जाय धर्म पुरुषार्थ की यह अनमोल घड़ियाँ ही बीत जाय ।

जरा अपनी आत्मा की ओर तो ध्यान दो । यह कितनी दुःखी है ? कितनी मलिन है और कितनी अशान्त है ? उसकी अशान्ति, उसका दुःख और मलिनता को दूर करने के लिए तुम्हें अविरल प्रयत्न करना चाहिए ।

तू सबसे भिन्न है सब पर हैं । तू तेरा विचार कर, तेरी आत्मा का विचार कर ।

१२. अशान्ति निवारण

मनुष्य का चित्त प्रायः तभी अशान्त होता है जबकि उसके स्वजन-परिजन तथा स्वयं उसका शरीर भी, उसकी इच्छा के विरुद्ध प्रवृत्ति करने लगते हैं।

मनुष्य का यह स्वभाव है कि उसके स्वजन-परिजन आदि जब उसके विरुद्ध बोलते अथवा आचरण करते हैं, तब वह अशान्त हो जाता है, दुःखी हो जाता है। वह यह नहीं सोचता कि स्वजन-परिजन, यहाँ तक कि शरीर भी उसका अपना नहीं है। वह इन सब से भिन्न है... और जो उससे भिन्न है, वे भला उसकी इच्छा अथवा अभिप्राय के अनुसार क्यों चलेंगे?

इसलिये सोचो कि 'मैं स्वजनों से अलग हूँ, परिजनों से अलग हूँ। मैं वैभव और शरीर से भी भिन्न हूँ।'

यह विचार जैसे-जैसे चित्त में दृढ़ होता जायगा वैसे-वैसे तुम्हारा चित्त शान्ति प्रसन्नता तथा सुख अनुभव करता जायगा। शोक और सन्ताप भाग जायेंगे।

१२ तेरा क्या ?

"णमोह नत्थि म कोइ'

"मैं एक है समार में मरा कोई नही

' इस भावना से अपन हृदय का सुवासित कर दो। अपने भौतिक स्वार्थ की सिद्धि के लिए तमने जिस किसी का भी अपना माना है उसम कोई तुम्हारा अपना नहीं, एसा श्री जिनश्वर भगवान का कथन है।

'मै एक है,' इसका अर्थ यह है कि 'मै शुद्ध आत्मद्रव्य हूँ-कर्मो के जाल से अछूता' शुभाशुभ कर्मों के उदय को मै अपना नही मानता। मेरा अपना यदि कुछ है, तो वह है, शुद्धात्म। वह मरा ह और मेरा हा रहेगा। मुझ से वह कभी भी अलग होने का नही।

वास्तव म, जीव इस ससार म जो अपना नही है उसको अपना मानकर ही दुखी होता है और जो वास्तव म उसका अपना है, उसको नही पहिचानता। इसीलिए भव भ्रमण क चक्कर पडा रहता ह।

१४. सब कुछ पराया !

तुम्हारे मन मे शायद यह प्रश्न पैदा हो कि-'इस ससार मे कोई भी मेरा नही, यदि ऐसा विचार दृढ हो जाय तो फिर इस संसार मे रहा कैसे जा सकता है ।'

वस्तु पराई है, यह समझकर वस्तु का उपयोग करने वाला वस्तु पर रागी नही बनेगा । जबकि वस्तु को अपनी मानकर उपयोग करने वाला वस्तु पर रागी बनेगा और वस्तु के न रहने पर बहुत दु.ख अनुभव करेगा । इसके विपरीत वस्तु को पराई समझने वाला, वस्तु के नष्ट हो जाने पर दु.खी नही होगा । कारण यह है कि उसने समझ ही रखा है कि 'यह वस्तु मेरे पास से चली जाने वाली है ।'

पडौसी के पास से क्या कोई वस्तु तुमको नही लानी पडती ? तुम उसका उपयोग भी करते हो, फिर भी जब पडौसी उस वस्तु को वापिस ले जाता है, तब तुमको दु,ख नही होता । बस, इसी तरह तुम्हारे पास जो कुछ है, वह सब पराया है, इस विचार को-दृढ बनाओ ।

१५ सब कुछ परमात्मा का !

तुम्हारे पास जो कुछ है वह तुम्हारा नहीं है हृदय में ऐसा निश्चय हो जाय, उसके बाद यह विचार दृढ़ करना कि 'मेरे पास जो कुछ है, वह सब परमात्मा का है उस पर परमात्मा का अधिकार है।

यदि विचार कर देखो, तो समझ में आवेगा कि तुम्हारे पास जो कुछ अच्छा है, सुंदर है, वह सब तुमको परमात्मा की कृपा से ही प्राप्त हुआ है।

जैसे जैसे यह विचार दृढ़ होता जायगा, वस वैसे तुम सम्पत्ति का उपयोग परमात्मा के द्वारा बताये गये कार्यों में बिना संकोच करोगे।

एक तरफ तुमने सम्पत्ति पर से अपना अधिकार हटा लिया, दूसरी तरफ उस पर परमात्मा का अधिकार स्थापित कर दिया, फिर परमात्मा के द्वारा बताये गये कार्यों में सम्पत्ति को खर्च करते हुए क्या तुमको संकोच होगा ?

'मेरे पास जो कुछ है, सब कुछ परमात्मा का है,

१६. काया की माया

तुमको क्या प्रिय है ? तुम्हारा शरीर ? तुम्हारी दृष्टि यदि तुम्हारे अपने शरीर पर ही होगी । तो दूसरे प्राणियों का भी तुम शरीर ही देखोगे । दृष्टि यदि तुम्हारी आत्मा पर होगी, तो दूसरे की ओर देखते समय भी तुम्हारी दृष्टि उसकी आत्मा की तरफ ही जायगी ।

शरीर के प्रति राग, प्रेम खतरनाक है । जब तक यह राग, यह प्रेम हटेगा नहीं, तब तक आत्मा की तरफ तुम्हारी दृष्टि नहीं जायगी । आत्मा की दुर्दशा दिखाई नहीं देगी ... तब उसको दूर करने का पुरुषार्थ भी तुम नहीं कर सकोगे ।

शरीर पर से दृष्टि हटे तभी आत्मा पर दृष्टि पहुँचे । आत्म-दर्शन करने के लिए शरीर परसे राग-दृष्टि हटाना अनिवार्य है ।

और फिर राग करने जैसा वास्तव में शरीर में है भी क्या ?

१७. कोयले जैसी काया !

चमडी, हड्डी, खून और माम से बना यह शरीर क्या तुमको अच्छा लगता है, प्रिय लगता है ? अनतगुणो से भरी सत् चित्-आनदमय आत्मा प्रिय नही लगती ? शरीर म मारभूत कुछ भी नहीं। इस पर राग मत करो । राग करके तुम शरीर को निमल बनाने का प्रयत्न करते हो, परन्तु इससे शरीर विशुद्ध होने का नही। आज यदि तुमने शरीर को शुद्ध किया भी तो क्या ? वह कल फिर अशुद्ध हो जायगा ! आज तुमने जिसको पुष्ट बनाया, कल वह स्वय निबल हो जायगा।

कोयले को प्रयत्न पूवक चाहे जितना धोया जाय, वह काला ही रहेगा मिट्टी की कोठी को चाहे जितना साफ करो, मिट्टी ही निकलेगी।

शरीर के ऊपर की चमडी न देखो। उसके अन्दर जो आत्मा है, उसको देखो। रूप तो पुद्गल की माया है। आत्मा अरूपी है शरीर की बीभत्सता का विचार उस पर से विरागी बनो।

१८. मेरी मूर्खता........

हे अनन्त ज्ञानी नाथ ! आज तक मैंने आपसे अपनी इच्छाओं को पूर्ण करने की प्रार्थना की। कैसी मूर्खता . . !

मेरी इच्छा मेरे हित में है या अहित में, इसका तो मुझे भान ही नहीं और आपसे अपनी उन्हीं इच्छाओं के वश में होने के लिए प्रार्थना की..... मेरी कितनी अज्ञता !

नाथ ! इस भूल के लिए मुझे क्षमा कीजिये हे कृपानिधि, आप अनंतज्ञानी हैं .. . मेरा हित-अहित आप जानते हैं। जिससे मेरा हित हो, उसी में आप मेरा विनियोग करदें ! जिस व्यक्ति या पदार्थ का संयोग मेरे हित में न हो, उसको मुझसे दूर रखें ! भले ही मैं उसके लिए रोऊँ या जो कुछ करूँ।

हे हृदयेश ! अपनी कोई भी इच्छा मैंने नहीं रखी। रखना भी नहीं चाहता ..... मैंने अपने आपको पूर्णरूप से आपके चरणों में समर्पित कर दिया है।

१९. शरीर का उपयोग

शरीर में इतनी अधिक आसक्ति नहीं होनी चाहिये कि जिससे धर्म-साधना में विघ्न पड़ा हो। शरीर का उपयोग आत्मा के उत्थान के लिए, आत्म कल्याण के लिए करना चाहिये। आत्मा मालिक है और शरीर नौकर। मालिक के लिए नौकर से काम लेना चाहिये।

शरीर साधन है, अतः उसका उपयोग करना चाहिये भोग के लिए नहीं, त्याग के लिए। शरीर से तप कराओ। उसे सदाचार के पालन में लगाओ, परमात्मा की भक्ति में प्रयुक्त करो। परमार्थ परोपकार के कार्यों द्वारा शरीर का लाभ लो।

ऐसा मनुष्य शरीर में रोग पैदा हो जाय, ऐसा बर्ताव करना नहीं है।

हाँ, रोग उत्पन्न हो जाने पर शोक न करना, अपितु अशरीरी बनने का ध्यान करना।

२०. बेढंगा संसार

अनन्त काल को दृष्टि के सामने रखकर यदि तुम स्नेही-सम्बन्धियो को देखोगे तो तुम्हारे हृदय मे राग-द्वेप की मात्रा प्राय. घट जायगी।

किस जीव के साथ कौनसा सम्बन्ध नहीं वाधा, लेकिन कौनसा सम्बन्ध आज कायम रहा ? न तो मित्रो का सम्बन्ध कायम रहा न शत्रुओ का।

एक समय का शत्रु मित्र वन जाता है और मित्र मर कर शत्रु वन जाता है। माता मर कर पुत्री हो जाती है और पुत्री मर कर भ्राता। पत्नी मर कर पुत्री वनती है और पुत्री मर कर पत्नी। ऐसे विचित्र सम्बन्धो वाले संसार मे किसके प्रति राग करना और किसके प्रति द्वेप करना ? एकाग्र चित्त से ससार के स्वरूप का विचार करो।

२१ दोष-दृष्टि

कभी जिसके गुण गाते हुए तुम थकते न थे, आज गुण गाना बन्द कर उसी के दोष बतलाना, क्या शुरू कर दिया ? भाग्यशाली ! किसी भी चेतनजीव के दोष देखने की कुटेव छोड़दो । दोष देखोगे तो आत्मा को नहीं देख सकते

दूसरा जो एक भारी नुकसान होगा उसका भी तुमको ध्यान है ? दूसरा के दोष देखने से य दोष तुमम भी आजायेंगे । और उन दोषा से तुम स्वयं दु खी होओगे । तुम दोष इसलिये देखते हो, क्योंकि अन्तमन मे तुमको य दोष अच्छे लगते ह ! जिमको जो वस्तु अच्छी लगती है, वह प्राय उसके पास आजाती है । इसलिय दूसरो के दोष देखने की लत छोड दो ।

२२. डायरी

तुम अपनी एक निजी डायरी बनाओ। उसमें अपने कुटुम्ब के प्रत्येक सदस्य का नाम लिखो। उसके बाद स्नेही-सम्बन्धियों तथा परिचित व्यक्तियों के नाम लिखो...... फिर गुरु महाराज का नाम लिखो।

प्रत्येक नाम के सामने, उस व्यक्ति के एक महत्त्वपूर्ण गुण को लिखो। कोई न कोई गुण तो दिखाई देगा ही...... खोज करके भी लिखना। फिर सुबह या शाम एक बार उन नामों के साथ उनके लिखित गुणों का पाठ करना प्रारम्भ करो। उसके बाद जब तुम उन व्यक्ति को देखोगे, तब उनका वह गुण, जो तुमने लिखा होगा, तुम्हारे सामने आ खड़ा होगा। तब उसके प्रति तुमको द्वेष भी नहीं होगा।
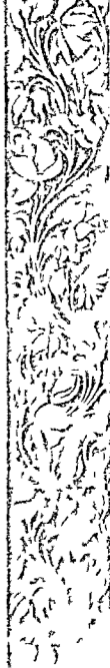
२४. सम्यक्त्व

सम्यक्त्व, विरति, क्षमा, नम्रता, सरलता, निर्लोभता तथा मन, वचन, काया की शुभ प्रवृत्तियाँ —ये सवर हैं।

सम्यक्त्व को दृढ वनाओ। परम कृपालु वीतराग सर्वज्ञ देव को परमात्मा मानो। इन्ही पर श्रद्धा स्थापित करो। इनको छोड-कर किसी मिथ्यादृष्टि देव या देवी की उपासना मत करो। इस प्रकार पंच महा-वृतधारी सद्गुरु पर ही गुरुवुद्धि रखो। कंचन-कामिनी के सगी दभी साधुओं से दूर रहो। उनको गुरु मत मानो। इस तरह केवली भगवंत द्वारा वताये गये धर्म को ही धर्म मानो। इस प्रकार यदि तुम्हारा सम्य-क्त्व दृढ हो गया, तो समझो कि आश्रव का एक द्वार वन्द होगया।

२६. क्रोध-शमन

क्रोध क्यों करते हो ? क्रोध करके तुम अपनी आत्मा मे अशान्ति पैदा करते हो। इसलिये क्रोध जागृत हो, उस समय क्षमा धारण करो। नीचे लिखे उपाय इसके लिए उपयोगी सिद्ध होगे—

(१) क्रोध पैदा होते ही मौन धारण करलो।

(२) जिस प्रसंग के कारण क्रोध उत्पन्न हुआ हो उस प्रसंग को याद मत करो।

(३) उस स्थान से चले जाओ।

(४) श्री नवकार मत्र का स्मरण करो।

(५) अपने पापोदय का विचार करो।

(६) जिसके प्रति क्रोध जगा हो, क्षणभर उसके विशुद्ध आत्मस्वरूप को ध्यान मे लाओ।

(७) क्रोण करने से स्व-पर आत्मा मे अशाति बढ़ती है, इसका विचार करो।

इस प्रकार बलपूर्वक भी यदि तुम क्रोध पर नियन्त्रण करोगे तो बाद मे तुम्हारे हृदय मे क्रोध पैदा भी नही होगा। क्रोध को दबाने का साधन क्षमा है।

२७. अहं-मम

'अहं' और 'मम' ये मोहराजा के मन्त्राक्षर हैं। अपना जीव इनका जाप करता रहता है, इसलिये अज्ञान का अन्धकार आत्मा में गहन बनता जाता है। इसी मन्त्र ने तो सारे जगत् को अन्धा बना रखा है।

यदि तुम अपना हित नहीं देख पा रहे हो तो समझ लेना चाहिये कि 'अहं मम' का जाप चालू है। उसी से दिव्य दृष्टि ढक गई है। अगर तुम अपनी दिव्य-दृष्टि खोलना चाहते हो तो 'अहं मम' के इस मन्त्राक्षर को भूलना होगा और इसके स्थान पर 'नाहं न मम' के मन्त्राक्षर का जाप करना पड़ेगा।

'मैं नहीं, मेरा नहीं,' इस विचार को आत्मा में दृढ़ कर देना होगा। अहत्व और ममत्व को हटाने में ही छुटकारा है। यदि तुमको अपने कल्याण का मार्ग देखना है और उस पर चलना है, तो इनको मन से निकाल दो।

२८. पूर्व तैयारी—

क्रोध का प्रसंग उपस्थित होता है और तुम क्रोध कर बैठते हो। अभिमान का हमला होता है और तुम पराजित हो जाते हो। माया का जाल फैलता है और तुम उसमे फस जाते हो। लोभ का आक्रमण होता है और तुम उससे दब जाते हो ......

एक ओर तो तुम धर्म क्रियाएँ करते हो और दूसरी ओर जब तुम अपनी ऐसी दशा देखते हो तो तुम्हारे मन मे प्रश्न उठता है कि—'धर्म करते हुए भी कषायो के वश मे हो जाना पड़ता है ......'

भाग्यशाली! शत्रु का सामना करने के लिऐ शत्रु का आक्रमण होने पर तैयारी करने बैठना मूर्खता है। हमला होने के पूर्व ही उसकी तैयारी रखना चाहिये। 'ऐसे शस्त्र तैयार रखना चाहिये जिनसे कि हमले का प्रतिकार किया जा सके।

२६ व्यूह–रचना

☐ शत्रु हमला कब करता है ?
☐ शत्रु किस स्थान में हमला करता है ?
☐ शत्रु की व्यूह रचना कैसी है ?
☐ शत्रु के सहायक कौन कौन हैं ?
☐ शत्रु का बल कितना है ?

इतनी सब बातों का बारीकी से अध्ययन करने के बाद शत्रु के विरुद्ध अपने संरक्षण की योजना बनानी चाहिये। इसी प्रकार–

☐ क्रोधादि हमला कब करते हैं ?
☐ क्रोधादि किस स्थान पर हमला करते हैं ?
☐ क्रोधादि की व्यूह रचना कैसी है ?
☐ क्रोधादि के सहायक कौन कौन हैं ?
☐ क्रोधादि का बल कितना है ?

इतनी सूक्ष्मतापूर्ण छानबीन करने के बाद उनके हमले का सामना करने और उन्हें मार भगाने के लिए अपनी योजना पर विचार करना चाहिये। तभी अपने क्रोधादि से बच सकते हैं।

३०. कोर्ट में केस

भगवान् जिनेश्वर देव के कोर्ट मे हमने अपने शत्रु-कर्मों के विरुद्ध केस दायर किया है। अनन्त काल मे हमको पीड़ा पहुँचाने वाले कर्मों से मुक्त होने की अपनी मांग हमने श्री जिनेश्वर भगवान् के समक्ष प्रस्तुत की है।

अपनी बुद्धि अल्प है। शत्रु के पक्ष मे बड़े-बेरिस्टर, सोलीसीटर बैठे हुए है। तो क्या, हमको भी बेरिस्टरो और सोलीसीटरो को अपने पक्ष मे नही रखना चाहिये ?

अपने बेरिस्टर पूज्य गुरु महाराज है। इनकी सलाह-सूचना लेकर ही हमको काम करना चाहिये। जहाँ तक केस चले और अपनी विजय स्पष्ट न हो जाय तब तक बेरिस्टर के साथ सतत सम्पर्क बनाये रखना चाहिये। उसके लिये तन-मन-धन का जितना भी व्यय करना पडे, करने मे हमे हिच-किचाना नही चाहिये। कारण ? विजय प्राप्त हो जाने के बाद हमको अनन्त सम्पत्ति, जो हमारी अपनी ही है, मिल जायगी।

३१ आत्म-विशुद्धि के लिए

सहनशीलता और त्याग, इन दो बातों पर पूरा ध्यान देना। इच्छानुसार न मिले तो सहन कर लेना और आवश्यकता से अधिक सम्पत्ति मिल जाय तो उसका त्याग कर देना, सुखी और शान्त जीवन जीने का मार्ग है।

भोग आनन्दवृत्ति तुमको सच्चा शान्तिमय जीवन जीने नहीं देती। यह जीवन आनन्द के लिए नहीं यह जीवन जगत् के जड़ पदार्थों के पीछे भटकते फिरने का नहीं, यह न भूलना। यह जीवन तो उच्च मनोरथ पूर्वक आत्मविशुद्धि करने के लिए है इस बात को सतत् याद रखना।

३२. त्रिविध-शुद्धि

आत्म-शुद्धि करने के पूर्व तन और मन की शुद्धि करना जरूरी है। अभक्ष्य भोजन का त्याग, अपेय पान का त्याग और स्त्री संसर्ग का त्याग करने से तन की विशुद्धि होती है। उसके बाद मन की विशुद्धि। उसके लिए शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श के मलिन विचारों को मन में न घुसने दो। इस हेतु पंचपरमेष्ठि की दुनिया की कल्पना स्थिर करो। जब विचार करो तब पंच परमेष्ठि विषयक ही विचार करो। उसके बाद करना है, आत्मशुद्धि तप-त्याग द्वारा, ज्ञान-ध्यान द्वारा, विनय-भक्ति द्वारा कर्मों को क्षय करने का नाम आत्मविशुद्धि है। इस प्रकार त्रिविध शुद्धि द्वारा जीवन को सफल करना चाहिये।

३३. एक पसन्द करो

तुम क्या चाहते हो ? बाह्य सुख या आतरिक शान्ति ? दोनो चाहोगे तो नही मिल सकते। क्यो ? यह प्रश्न मत करना। सनातन व्यवस्था ही एसी है।

दोनो म से एक पसन्द करो। तुम यदि बाह्य सुख मागोगे तो वे भी मिल जायगे, धर्म तुमको वह भी दे सकता है परन्तु बाह्य सुख तुम्हारे पास टिकेगे नही निर्भयता का सुख तुम नही पा सकोगे। तुम इन सुखो के गुलाम बन जाओगे। इन सुखो के उपभोग की आदत पड जाने पर, जब ये सुख नही रहेगे, तब तुम्हारी स्थिति कैसी होगी, इसका विचार करो।

यदि तुम आन्तरिक शान्ति चाहते हो तो, इसके लिए पहिले तो तुम्हे त्याग के अभ्यास काल मे कष्ट सहन करने के लिये तैयार रहना होगा। आन्तरिक शान्ति के लिए, जिस प्रकार बाह्य सुखो का त्याग करना पडेगा, उसी प्रकार आन्तर कषायो का भी त्याग करना पडेगा। जैसे-जैसे दोनो प्रकार का त्याग होता जायगा वैसे-वैसे तुम आन्तरिक शान्ति अनुभव करते जाओगे।

३४. आत्मा की स्मृति

आत्मा की स्मृति के बिना आत्मा की शुद्धि किस प्रकार हो सकेगी? सन्तजन सतत स्मृति के कारण अपनी शुद्धि का ध्यान करते हैं। 'मैं आत्मा हूँ', यह स्मृति सदैव रहना चाहिये। फिर तुम्हारी विशुद्धि करने का विचार पैदा होगा, इच्छा होगी, तीव्र भावना जागेगी।

आत्म विशुद्धि की तीव्र भावना तुम को परमात्मा का स्मरण करायेगी। क्योंकि परमात्मा के बिना स्मरण के आत्म विशुद्धि की ही नहीं जा सकती। इस प्रकार आत्म-विशुद्धि के लिए जब तुम परमात्मा का स्मरण करोगे, दर्शन और वंदन करोगे और उनमें तुम्हारा तन-मन तल्लीन हो जायगा तब चित्त की चंचलता की शिकायत भी नहीं रहेगी।

भूलना मत कि यह जीवन आत्म विशुद्धि के लिए है। मानव-जीवन के सिवाय कहीं भी आत्मविशुद्धि का 'प्रयोग' नहीं हो सकता। इसलिए इस महान् कर्तव्य को अदा करने के लिए जागृत बनो।

३६. प्रीति

प्रीति करना है ? तो जिसके साथ प्रीति करो, उसमे ऐसी चीज देखकर करो कि जो स्थायी तौर से रहने वाली हो....... ...... " जो अस्थायी हो, परिवर्तनशील हो, उसको देखकर, उसके प्रति आकर्षित होकर यदि प्रीति की गई तो वह प्रीति टिक नही सकेगी प्रीति के स्थान पर द्वेष पैदा होगा। रूप, वर्ण, धन, सम्पत्ति, सत्ता, प्रेम-राग, इन मे से कुछ भी देखकर प्रीति की तो अन्त मे पछताना पड़ेगा। कारण कि रूप आदि सब परिवर्तनशील है। प्रिय व्यक्ति मे ये स्थायी तौर से टिकने वाले नही।

गुरु के प्रति प्रीति मे भी यही ध्यान रखना। गुरु मे जो गुण स्थायी हो, उन गुणो के प्रति तुमको यदि अनुराग हो, और उनसे यदि प्रीति करोगे तो कभी भी पछताने का मौका नही आवेगा। दूसरी एक बात और ध्यान मे रखना कि जिसके साथ प्रीति करो, उससे कुछ भी लेने की इच्छा मत करना..... समर्पण की भावना रखना।

३७ ऐसी कला दीजिये

हे परम कृपालु परमात्मा ! आप अपने अनन्त विज्ञान में चराचर समस्त विश्व को देख रहे हैं। उसमें आप इस पृथ्वी पर आपकी मूर्तियों से मण्डित मंदिरों को भी देख रहे हैं। उन मन्दिरों में अपनी मूर्तियों को आप खण्डित दशा में भी देख रहे हैं। किन्हीं अज्ञानी जीवों को आप मन्दिरों में आपकी मूर्तियों की अवहेलना करते हुए भी प्रत्यक्ष देख रहे हैं, फिर भी आप न तो राग करते हैं न द्वेष।

प्रभो ! विश्वदर्शन की कैसी अनुपम कला आपको प्राप्त हुई है। आपसे मुझे ऐसा ही कहना चाहिये। मुझे तो यदि पता लग जाय कि कोई मेरे नाम पर गालियाँ देता है, मेरी आकृति का अपमान करता है, तो गालियाँ देने वाले और अपमान करने वाले के प्रति मुझे क्रोध होता है और मेरे नाम और आकृति को जो पसन्द करता हो, प्रेम करता हो, उसके प्रति मेरे मन में राग हो जाता है। बस इस राग-द्वेष को मिटाने की कला मुझे दीजिये।

३८. तुम्हें वे देख रहे हैं

उन परमपिता की ओर तो देखो……… वे परम कृपालु निरन्तर तुमको देख रहे हैं……तुम उनकी तरफ नहीं देखते। तुम तो उनकी तरफ देख रहे हो कि जो तुम्हारी ओर देखते लिए तैयार नहीं!

करुणा के सागर……अनन्तशक्ति निधान वे परमात्मा तुमको निरन्तर देख रहे हैं, फिर तुमको दुःख किस बात का? अशान्ति क्यों? जो बालक माता की दृष्टि में है, वह जानता है कि मेरी माता मुझे देख रही है, अतः वह दुःख अनुभव नहीं करता।

तुम उन परमपिता की तरफ दृष्टि डालो……उनको देखने के लिए बाह्य जगत् की चकाचौंध से मुक्त होओ और आँखें बन्द करके स्थिर बनो……फिर परमपिता का नाम लेकर पुकारो। जहाँ तक उनके दर्शन न हों, पुकार जारी रखो, अधीर मत बनो। एक बार दर्शन दे देने के बाद वे फिर कभी भी तुमको छोड़कर नहीं जायेंगे।

३६ रसानुभूति

सिनेमा देखते समय मन करता है कि, 'सिनेमा जल्दी पूरा न हो तो अच्छा।' सिनेमा देखकर बाहर निकलने के बाद भी मन पर सिनेमा के दृश्य छाए रहते हैं मुख उसकी प्रशंसा करता रहता है।

भगवान का दर्शन करते समय मन क्या अनुभव करता है? क्या यह कि 'भगवान् के मंदिर से जल्दी न निकला जाय तो अच्छा?' मन्दिर से बाहर निकलने के बाद भी क्या मन में भगवन्त की मूर्ति बसती है? दर्शन के बाद बाहर निकलने पर क्या मुख से उनकी प्रशंसा निकलती है?

भाग्यशाली! प्रत्येक धर्म-साधना में रसानुभूति किये बिना आनन्द सन्तोष नहीं होगा। एकाध धर्म साधना तो ऐसी पकड़ो कि जिसका व्यसन लग जाय और बाद में उसका स्मरण और प्रशंसा करते रहो तो मन हरे। फिर तो [illegible] नहीं।

४०. लड़ते रहो

बात-बात मे क्रोध न आवे, प्रसग-प्रसंग पर अभिमान न जगे, स्थान-स्थान पर माया पैदा न हो और प्रत्येक अवसर पर लोभ न लगे, उसका नाम है, शान्ति । उसी का नाम प्रशम ।

यहा, ऐसी शान्ति प्राप्त हो जाय तो समझलो कि मोक्ष-सुख की आंशिक प्राप्ति हुई, इसलिये उसे ही जीवन का लक्ष्य बनाओ । क्रोधादि कषायो पर नियत्रण करने के प्रयत्न मे लगे ही रहो । प्रत्येक धर्म-साधना को करते हुए क्रोधादि कषायो को शमन करने का ही लक्ष्य रखो । दूसरी तरफ क्षमा, नम्रता, सरलता, निर्लोभता का लक्ष्य रखते हुए बार-बार उनका प्रयोग करो ।

हताश न होना, क्योकि क्रोधादि के सामने जीवन भर लडना पडेगा । विश्वास रखना कि 'अवश्य मेरी विजय होगी ।' सूक्ष्म-दृष्टि से निरीक्षण करोगे तो समझ मे आवेगा कि तुम दिन-प्रति-दिन विजय की तरफ बढते जा रहे हो । जब यह बात तुम्हारे ध्यान मे आवेगी, तब तुम्हारा हृदय आनन्द से भर जायगा ।

४१ मौन

पुग्दलेष्वप्रवृत्तिस्तु योगोनां मौनमुत्तमम्'

केवल बोलना बन्द कर देने का नाम मौन नहो है। विषय कषायो म मन, वचन तथा काया से प्रवृत्त न होना, मौन कहलाता है। यह मौन, धम बनता है और यही धम, पापा का क्षय करता ह।

स्वपर हित साधक वच नबोलन म मौन भग न ही होता, जबकि स्वपर हित म बाधक वचन बोलने से मौन भग होता है। इसलिए ऐसे विचार भी मन मे प्रविष्ट न होने देना चाहिये, जिनसे आत्मा का अहित हो।

मौन धारण करन से आन्तरिक शक्ति प्रकट होती है और अधिक बोलने से शक्ति क्षीण होती है। ज्यादा बोलने से विवेक का भी नाश होता है। अत इतना ही बोलना चाहिये कि जिसको यदि लिख लिया जाय, तो तुम उसके नीचे हस्ताक्षर कर सको। मौन एकादशी की आराधना करके मन वचन-काया के योगो को पाप प्रवृत्ति से दूर करना है।

४२. प्रतिकूलता

अनुकूलता किस प्रकार प्राप्त करना, इसका विचार करने के बजाय, प्रतिकूलता को किस प्रकार सहन किया जाय, इसका विचार करना चाहिये । भले ही आज कोई प्रतिकूलता उपस्थित न भी हो; फिर भी भविष्य मे वे आने वाली है, ऐसी कल्पना करके उनका शूरवीरतापूर्वक प्रतिकार करने की योजना पर विचार करना चाहिये ।

विशेषतः मनुष्य का जीवन प्रतिकूलताओ से भरा है और जब इसके सामने प्रतिकूलताएँ आ खडी होती है, तब वह अशान्त बन जाता है, दु.ख अनुभव करता है। इस स्थिति मे परिवर्तन करने हेतु उपर्युक्त सूचना है ।

सचमुच सच्चा आनन्द तो तब अनुभव हो, जबकि प्रतिकूलता का वीरतापूर्वक सामना किया जाय अथवा उसको सहन किया जाय ।

४३ त्याग

जिसका तूने ज्ञानपूर्वक त्याग किया, अब उसके उपयोग का विचार मत कर। ऐसा विचार बार बार आता हो तो उसको रोकने का उपाय तुझे तुरन्त कर लेना चाहिये।

जिसको तू त्याग करने योग्य मानता हो, पर जिसका तू त्याग न कर पाता हो, उसके लिए भी तुझे विचार करना चाहिये कि तू क्यो उसका त्याग नही कर पाता। उसका विचार तुझे इस प्रकार करना चाहिये कि एक दिन तू त्याग की सच्ची भूमिका पर पहुँच सके।

त्याग करने योग्य का त्याग करने के बाद ही सच्ची शाति का आनन्द प्राप्त होगा। त्याग करने योग्य के उपयोग से जो सुख का अनुभव होता है, वह वास्तविक नहीं, कृत्रिम है। सुख का अनुभव तो आत्मा के ज्ञानादि गुणो में विलास करने से प्राप्त होता है।

४४. कषाय

कषायों की वृद्धि मे दुःख है, कपायों की हानि मे सुख है। जहाँ दुःख का अनुभव हो, वहाँ मालूम करना चाहिये कि उसके मूल मे कौनसा कषाय काम कर रहा है? कोई न कोई कषाय तुमको वहाँ जरूर दिखाई देगा। तुम उस कषाय को दूर करोगे कि तुरन्त ही दुःख रवाना हो जायगा। दुःख का बाह्य प्रतिकार करने से दुःख बढ़ जाता है। कारण यह है कि वैसा करने से कषाय बढ़ते हैं। दुःख के कारण कषाय है। उन कपायों को ही दबाने का प्रयत्न करना चाहिये। ऐसा करने पर आन्तरिक शान्ति का अनुभव होगा।

कपायो की तीव्रता मे अगर सुख का अनुभव होता हो तो उसे खाज को खुजलाने मे अनुभव होने वाले सुख के समान समझो।

४५ आत्म-प्रीति

आत्मा विस्मृत हो जाय, ऐसी बात मुँह से मत निकालो, ऐसा आचरण भी मत करो। यदि कभी प्रमादवश वैसा मुँह से निकल जाय या आचरण हो जाय तो तुरन्त आत्मभाव में लौट आओ।

परमात्मा का आलम्बन आत्मा की स्मृति के लिए लो। परमात्मा की मूर्ति वह दर्पण है, जिसमें तुम्हें अपना स्वरूप देखना है। परमात्मा पर प्रीति करने का अर्थ है, अपनी ही आत्मा पर प्रीति रखना। अत जो जीव परमात्मा पर, परमात्मा की मूर्ति पर प्रेम नहीं रखता वह जीव खुद की आत्मा के प्रति भी प्रेम नहीं करता।

इस जीवन में यदि एक मात्र आत्मा पर प्रेम हो जाय, दृढ प्रीति हो जाय, बस, फिर चिन्ता करने का कोई प्रयोजन नहीं। इसलिये यही प्रयत्न-पुरुषार्थ करो।

४६. कृपा

जो कुछ प्राप्त हुआ है, उसमें इतने लीन न हो जाओ कि जिनकी कृपा से वह मिला है, उसको भी भूल जाओ। ऐसे सब का त्याग कर देना चाहिये कि जिसमें आसक्त होने से उस कृपालु को भी भुलाया जा सकता हो।

सुख की प्राप्ति पुण्य के उदय से होती है। पुण्य का उदय पुण्य के बन्ध से होता है। पुण्य का बन्ध होता है, धर्म की आराधना से। धर्म मिलता है, परम कृपालु परमात्मा के पास से। इसलिए सुख का मूल कारण, तरण-तारण परमात्मा है।

परमात्मा को ही जीव भूल गया ! और इनकी कृपा से मिले वैभव सुख में ही रचा-पचा रहा ! वह अब परमात्मा की कृपा से प्राप्त वैभव का उपयोग परमात्मा की आज्ञा के अनुसार करने के लिए भी तैयार नही। क्या यह कृतघ्नता नही ?

ध्यान रखो ! परमात्मा को न भूलो !

४७ राग

वीतराग का अनुसरण करने के लिए राग का संग छोड़ देना चाहिये। राग का संग रखकर वीतराग का अनुसरण नहीं किया जा सकता। राग का त्याग करने के लिए राग के साधनों का त्याग करो। ऐसे स्थानों का भी त्याग करो। जिसके कारण राग के साधनों अथवा स्थानों का अनिवार्य रूप से राग रखना पड़े, उसके प्रति भी विवेक दृष्टि से व्यवहार करो।

राग के रूपों का भी परिचय प्राप्त कर लेना चाहिये कारण कि राग भिन्न भिन्न रूप में जीव पर हमला करता है। जीव को ख्याल नहीं रहता कि 'मेरे ऊपर राग ने हमला किया है। इसलिए पहिले से ही राग के स्वरूपों का ख्याल कर लेना।

राग ऊपर से तो मित्र जैसा दिखाई देता है। मित्र बनकर जीव को फंसाता है, फिर क्रूर बन कर जीव को बेहाल कर देता है।

४८. भवितव्यता

भवितव्यता ! भगवन्त ने 'भवितव्यता' का यह कैसा महान् सिद्धान्त प्रतिपादित किया है !

तू सताप मत कर, क्लेश मत कर। तेरी अभिलषित-सिद्ध न हो, तव भी किसी के दोष मत देख, किसी पर भी रोष मत कर। यही विचार कर-'जैसी भवितव्यता थी, वैसा ही हुआ, वैसा ही होता है, वैसा ही होगा'।

भले ही पुरुषार्थ प्रवल हो, भावना भी निर्मल हो, परन्तु भवितव्यता अनुकूल न हो तो, कार्यसिद्धि नही होगी। उसमे भले ही दूसरे जीव निमित्त वन जाय, परन्तु मुख्य कारण भवितव्यता ही है। समय-समय पर यदि इस सिद्धान्त पर अमल किया जाय तो इससे चित्त मे वहुत शान्ति रहे।

४६ सौन्दर्य

सौंदर्य के बिना आकर्षण नहीं होता। आकर्षण के बिना चित्त का लगाव नहीं होता। आत्मा के प्रति चित्त का लगाव नहीं होता और परमात्मा के प्रति भी चित्त आकर्षित नहीं होता। इसका क्या कारण है? क्या आत्मा और परमात्मा में सौंदर्य नहीं, या वह दिखाई नहीं देता?

परमात्मा के सौंदर्य को देखने के लिए दृष्टि को सूक्ष्म बनाओ। सूक्ष्म दृष्टि से उस सौंदर्य को देखो। देखते ही रहो फिर चित्त उसमें लग जायगा। चित्त लग जाने के बाद आत्मा का सौंदर्य दिखने लगेगा। उसमें से आप रसानुभूति पाओगे।

५०. दूसरों के प्रति

दूसरा कोई जीव तेरी हिंसा करता है, तो तुझे अच्छा नहीं लगता, परन्तु जब तू दूसरों की हिंसा करता है, तब क्या तुझे खटकता है ? दूसरा मनुष्य तेरे साथ झूठ बोले, यह तू पसन्द नहीं करता, परन्तु क्या तेरा दूसरों के साथ झूठ बोलना तुझे खलता है ?

दूसरो से तू अपने प्रति जैसा आचरण चाहता है, दूसरो के प्रति भी तू वैसा ही आचरण करना प्रारभ कर । तू दूसरो से सुख चाहता है, तो दूसरो को सुख देने का कार्य तुझे भी करना होगा । दूसरो को दुःख देकर सुख प्राप्त करने की प्रवृत्ति खतरनाक है ।

यदि तू सुखी होना चाहता है, तो दूसरो को दुःख देने की वृत्ति-प्रवृत्ति तुझे हर हालत मे छोड़नी पड़ेगी । दूसरो को दुःख दिये विना, जो सुख मिले, उसी मे तुझे सन्तोष मानना चाहिये । इसमे से भी यदि दूसरो को सुखी बनाने के लिए तुझे त्याग करना पड़े, तो करना चाहिये ।

५१. गुण–पक्षपात

गुणो के प्रति पक्षपात मनुष्य को गुणी बनाता है। मनुष्य के सामने गुण और दोष जब उपस्थित होते हैं तब जो गुणो का पक्ष और दोषो की उपेक्षा करता है समझना चाहिये कि वह मनुष्य गुण-पक्षपाती है। उसकी दृष्टि जहाँ जायगी, वहाँ वह गुण का ही दर्शन करेगी और उसका ही पक्ष करेगी। उसकी वाणी गुणो का ही गान करेगी। कारण कि जिसका जिसके प्रति पक्षपात होता है, वह उसको ही देखता है, और उसी की प्रशंसा करता है।

भले ही तुम में एक भी गुण न हो लेकिन यदि गुणो के प्रति पक्षपात है, तो कल वे गुण तुम में आये बिना नहीं रहेंगे। इसलिये गुणों के प्रति पक्षपाती बनो।

५२. दवाखाना

डाक्टर के दवाखाने मे दो तरह के लोग आते है-रोगी और मित्र। रोगी आते है, अपने रोग को दूर करने की दवा लेने। मित्र आते है, डॉक्टर को मिलने और बातचीत करने के लिए। रोगी डॉक्टर के सामने अपने रोग की बात करेगे और उसको दूर करने के लिए उचित औषधोपचार की प्रार्थना करेगे, जबकि मित्र दुनिया भर की बात करेगे, पर रोग की बात नही करेगे।

साधु पुरुष भव रोग के डॉक्टर है। उनके पास तुम किस रूप मे जाते हो? दर्दी के रूप मे या मित्र के रूप मे? क्या तुमने कभी किसी त्यागी-विरागी-ज्ञानी साधु के पास जाकर अपने मन, हृदय या आत्मा के रोग बतलाये? यदि बतलाये तो कैसे, हँसते-हँसते या रोनी सूरत बनाकर? रोग दूर करने हेतु तुमने औपधोपचार के लिये उनसे प्रार्थना की? साधु-पुरुपो ने यदि कभी बिना तुम्हारी प्रार्थना के ही औषधोपचार बतला

दिया, तो तुमने उसका उचित उपयोग किया ?

साधु पुरुषों के पास जाकर दुनिया भर की बातें तो नहीं करते ? डॉक्टर के भी डॉक्टर तो नहीं बन जाते (बिना डिग्री के) ? वास्तव में जिनको पुराने रोग सताते हैं और इलाज के लिए डॉक्टर के पास जाते हैं, उनको डॉक्टर के रोग होते हुए भी, दिखाई नहीं देते। उनका मन तो खुद के रोग की तरफ लगा रहता है। रोगी डॉक्टर भी दूसरों को नीरोगी बना सकता है, परन्तु जो उसको नीरोगी कर सकते हैं, वे स्वयं डाक्टर के पास अपना रोग दूर करने जाते हैं।

साधुओं के पास स्वयं अपना सुधार कराने के लिए आते हो या साधुओं को सुधारने ?

---

५३. भवकूप

मानलो किसी दुष्ट ने तु को बेहोश कर कुए में डाल दिया। दो-चार घन्टो के बाद भान आने पर ' 'अरे मैं यहाँ कुए में कहाँ से ? मुझे यहाँ किसने ला पटका ? ऐसा विचार आये या नहीं ? इस विचार के साथ ही दूसरा विचार–'अब मैं इस कुए में से बाहर किस प्रकार निकलूँ,' यह विचार भी आता है न ?

इतने में मानलो, तुम्हारी दृष्टि कुए में लटकती हुई रस्सी पर पडे, तो " तुम्हे कितनी खुशी हो। इसके साथ ही, तुमने ऊपर देखा कि एक दयालु पुरुष तुमको बाहर निकालने के लिए खडा है ! तब तो कितना अधिक हर्ष होगा। कुए में गिर पडने से तुम्हारा शरीर दर्द कर रहा है। सिर से खून भी टपक रहा है.... "फिर भी, तुम तुरन्त रस्सी पकडकर ऊपर चढ़ने का प्रयत्न करोगे।

ससार भी एक कुआ है, क्या तुम्हे इसका भान है ? 'इस ससार म, इस पापमय ससार मे मै किस प्रकार फस गया, अब इससे मैं कैसे बाहर निकलूँ,' ऐसा विचार आता है ? बाहर निकलने के लिए कभी उतावले हुए हो ?

देखो, इस ससार रूपी कुए म स बाहर निकलने के लिए परम कृपालु परमात्मा न धर्मसाधना की रस्सियाँ लटका रखी हैं। उनका सहारा लेकर ऊपर चढन का पुरुषार्थ करो। कुए के ऊपर परम कारुणिक साधु पुरुष तुमको सहायता देने के लिए खडे है। उनको देखकर कितना हर्ष होता है !

परन्तु प्रश्न यह है कि ससार के-भवके कूप म स बाहर निकलना है ?

५४. एक प्रश्न

"यह खाने योग्य है, यह खाने योग्य नहीं।

यह पीने योग्य है, यह पीने योग्य नही। यह पहिनने योग्य है और यह पहिनने योग्य नही है'......, ऐसी बाते करना केवल धार्मिक पागलपन है। दुनिया मे जो कुछ है, सब भोगने के लिए है......"

इस विचार का प्रसार-प्रचार आजकल बढ रहा है......। भोगासक्त मनुष्य को यह विचार प्रिय लगता है, परन्तु इस विचार को यथार्थ मानने वाले आज के बुद्धिशालियो से मेरा एक प्रश्न है—

"तुम जब बीमार हो जाते हो और डॉक्टर या वैद्य के पास जाते हो, तब क्या डॉक्टर या वैद्य तुमको नही कहता कि 'अमुक पदार्थ मत खाना-पीना, ऐसे कपडे मत पहिनना, ?' डॉक्टर जब तुमको खाने-पीने और पहिनने-घूमने मे अमुक का निषेध करता है, तब तुम उसको पागलपन समझते

हो ? डॉक्टर के शब्दों को हँसी में उड़ा देते हो ?

वहाँ तुमको डॉक्टर की बात यथार्थ लगती है। जब शारीरिक रोग मिटाने के लिए अमुक पदार्थ मत खाना, अमुक पदार्थ मत पीना आदि तुमको युक्तियुक्त लगते हैं, तब भला शारीरिक रोगों को मिटाने के लिए धार्मिक विधि निषेध क्या यथार्थ और युक्तिसंगत नहीं लगते ?'

इस प्रश्न का उत्तर देने में तुम हिचकिचाओगे ? सुनो! जब मानसिक और आत्मिक रोगों से तुम व्याकुल होओगे और उनको दूर करने की भावना जगेगी, तब तुम धर्म के द्वारा निषिद्ध किये गये पदार्थों को न खाओगे, न पीओगे न पहिनोगे।

५५. प्रवास

आनन्दो, तुम जंगल में रास्ता भूल गये। जेठ-वैशाख की भयंकर गर्मी के दिन है। बहुत भटकने के बाद ...... अचानक तुमको राजमार्ग मिल गया। इतना ही नहीं, राजमार्ग पर शीतल जल की प्याऊ भी दिखाई दी। पास ही सदाव्रत का मकान भी तुमने देखा। देखकर कितनी खुशी होगी!

जल्दी-जल्दी तुम वहाँ पहुँचे। सदाव्रत में जाकर भरपेट भोजन किया, प्याऊ पर जाकर प्यास मिटाई और विशाल वटवृक्ष के नीचे जाकर तुमने आराम किया।

इस खान-पान और आराम में क्या तुम अपने गन्तव्य स्थान पर जाना भूल जाओगे क्या? क्या अपने स्थान पर जाना रोक दोगे? कोई मुसाफिर आकर कहे कि "हम अमुक गांव जारहे है, चलना हो तो चलो, साथ रहेगा" तो तुम क्या उसको यह जवाब दोगे कि—तुमको जाना हो तो जाओ। यहाँ खाने को है, पीने को है और आराम के लिए

छायादार वट वृक्ष है, इसलिए मैं तो यहीं रहूँगा ?" अथवा आराम छोड़कर तुरन्त साथ हो लोगे ? तुम जानते हो कि सूर्यास्त होते ही प्याऊ बन्द हो जाती है, सदाव्रत का नौकर चला जाता है। फिर तो रह जाते हैं, जंगल व पशु। तुम सूर्यास्त से पहिले ही अपने गाँव पहुँचने के लिए सदाव्रत प्याऊ और वटवृक्ष का मोह छोड़कर चलते बनोगे।

भवरूपी जंगल में भटकते भटकते तुमको यह मनुष्य जीवन मिला है, जो सदाव्रत, प्याऊ और वटवृक्ष के समान है।' तुम अपना स्वस्थान-मोक्ष जाना तो नहीं भूल गये ? निग्रंथ महापुरुष मोक्षनगर जाने वाले मुसाफिर हैं। क्या तुमको उनका साथ अच्छा लगता है ? क्या तुम इनके साथ चलने के लिए तैयार हो ?

ध्यान रखो, आयुष्य का सूर्यअस्त हो जाने पर इस भवरूपी अटवी में क्रूर पशुओं द्वारा टुकड़े-टुकड़े हो जाना होगा, यदि आराम करने में भान भूल गये तो। भूलना मत कि तुम्हारा नगर मोक्ष है। वहाँ जैसे बने वैसे पहुँचने का लक्ष्य रखकर आगे बढ़ते जाओ। साधु पुरुषों का साथ मत छोड़ो।

५६. आत्मदर्शन

गुणों को देखने का मतलब है, आत्मा को देखना। जिसको केवल गुण ही देखने लग जांय, समझो, उसको आत्म-साक्षात्कार हो गया। आत्म-साक्षात्कार के लिए केवल गुणों को देखने की वृत्ति-प्रवृत्ति होना चाहिये।

दोष देखना, मतलब शरीर देखना। दूसरों के दोष देखने वाले को कभी भी आत्म साक्षात्कार नहीं होता, कारण कि दोष और शरीर का व्याप्य-व्यापक भाव है।

धुआँ देखकर किसी मनुष्य के होने का अनुमान नहीं होता, अपितु अग्नि का होता है, क्योंकि अग्नि के साथ धुआँ का व्याप्य-व्यापक भाव है अर्थात् जहाँ धुआँ होता है, वहाँ अग्नि होती है। अग्नि के बिना धुआँ हो ही नहीं सकता। इसी प्रकार जहाँ दोष होते है, वहाँ शरीर होता ही है। शरीर के बिना दोष हो ही नहीं सकते। इसलिए दोष-दर्शन किया कि शरीर पर ही दृष्टि जाने की-देह का ही भान होने का, आत्मा का नहीं।

आत्मा का भान करने के लिए तो गुणों का दर्शन करना चाहिये। गुणदर्शन बिना आत्मा का भान हो ही नहीं सकता। फिर छद्मस्थ आत्मा के लिए तो आत्मा का प्रत्यक्ष दर्शन अशक्य है। उसको तो अनुमान प्रमाण से ही आत्मा का दर्शन करना पड़ता है। और अनुमान प्रमाण में तो लिंगी का ज्ञान करने के लिए लिंग का ज्ञान होना भी चाहिये। इसलिए आत्मा का ज्ञान करने के लिए गुणों का दर्शन अवश्य होना चाहिये।

फिर आप तो गुण और गुणी का अभेदत्व भी मानते है। गुण देखा, का मतलब गुणी को देखा। अर्थात् हमने जहाँ किसी का गुण देखा कि समझो इसकी आत्मा ही देखी! प्रतिक्षण आत्मदर्शन का यह कितना सरल, सचोट और सरस प्रयोग है! जीवों के बीच में परस्पर निःस्वार्थ स्नेह, सहृदयता और मित्रता की प्रतिष्ठा करने का यह कितना सुन्दर उपाय है!

प्रयोगः—

- दूसरों के गुण ही देखने की आदत डालो।

- दूसरों के गुण ही देखने का विचार करो।

- प्रत्येक जीव में कोई न कोई विशिष्ट गुण रहा हुआ है, उसे ढूंढ निकालो।

- दूसरा जीव तुम्हारे दोष देखे, तो भी उसके दोष मत देखो।

- दूसरों के दोष दिख जाय तो तुरन्त उसको मन से निकाल फेंको और गुण की ओर मुडो।

आत्म-दर्शन के इन अमूल्य उपायों से सबका कल्याण हो!

५७ मूर्ति का सृजन

एक नयनरम्य मूर्ति का सृजन किस प्रकार होता है ?

सर्व प्रथम कुशल शिल्पी होना चाहिये। उसकी कल्पना में भव्यता सौन्दर्य और उत्साह होना चाहिये। पत्थर में भी विशिष्ट गुण होना चाहिये। वह निर्मल होना चाहिये शिल्पी की टांकी सहन कर सके, वैसा होना चाहिये।

शिल्पी कुशल हो, उसकी कल्पना भी भव्य सुन्दर हो उसमें अदम्य उत्साह भी हो परन्तु पाषाण दोषपूर्ण हो, टांकी की चोट लगते ही टुकड़े-टुकड़े हो जाय, ऐसा हो, तो क्या नयनाभिराम मूर्ति बन सकती है ? नहीं।

अपने को यदि उन्नत और पवित्र आत्मा का सृजन करना है, तो उसको गुरुदेव के हाथ में सौंप देना चाहिये। गुरुदेव की उनकी

सुन्दर-भव्य कल्पना के अनुसार आत्मा पर टाकी मारने देना चाहिये। स्थिरता से इन टाकियो के प्रहारो को सहन करना चाहिये" .... 'तभी पाषाण जैसी आत्मा मे से परमात्मस्वरूप प्रकट होगा।

पत्थर कभी भी आग्रह नही करता कि 'मेरी इच्छानुसार टाकी मारो' वह तो शिल्पी के हाथ मे अपना सर्वस्व समर्पित कर देता है। शिल्पी स्वय की इच्छानुसार जब चाहे तब टाकी मारता है और जितनी मारना होती है, उतनी वार मारता है।

अपने को अपनी इच्छाओ को अलग रख कर कुशल गुरुदेव को समर्पित हो जाना चाहिये। उनके उत्साह और भव्य सुन्दर कल्पना के अनुसार काम करने देना चाहिये।

---

५८ प्रीति

हे देव ! कृपानाथ ! आपके साथ मैं प्रीति का सम्बन्ध बांध सकूं, ऐसा कोई उपाय आप मुझे बताइये। विश्व की सोपाधिक प्रीति से मुझे विरक्त बनना है ऐसा धन्य दिवस मैं देखना चाहता हूँ।

मैं जानता हूँ कि आप विश्व से परे है, इसलिए जब तक मैं भी विश्व से पृथक् नहीं हो जाता, तब तक आपके साथ मेरा सम्बन्ध नहीं हो सकता। परन्तु जगत् की प्रीति में फंसे हुए मुझको मुक्त करना भी क्या आपका काम नहीं है ?

मुझ से प्रीति रखने वालों को मैं चाहता हूँ। जो मुझ से प्रेम करने का दिखावा करते हैं, उनकी कपट लीला को मैं नहीं जान पाता और अपना हृदय उनको दे देता हूँ मेरा हृदय टुकड़े-टुकड़े हो जाता है।

मेरे हृदयेश ! प्राणेश ! मेरी ऐसी करुणाजनक स्थिति आप देखते हैं जानते हैं, फिर भी आप मेरी उपेक्षा क्या करते हैं ?

आप मुझ पर मोह न कीजिये जिससे कि मैं आपका बन जाऊँ ! मैं आपको ही देखूं आपके सिवाय मुझे कुछ न दिखे।

५६. प्रहार कर !

हे हृदयेश्वर ! यदि तू मुझे प्राप्त होना ही न चाहता हो, तो तू आज ही मुझे बतला दे कि 'मैं तुझे नहीं मिल सकता'....

कारण यह है कि तू मिलेगा या नहीं, इसकी शंका मुझे सदैव सताया करती है। संसार के लोग भी मेरी इस शंका को दृढ़ करते हैं। वे कहते हैं कि–"वर्षों से हम उसके पीछे भटकते फिर रहे है, फिर भी वह हमको नहीं मिला तो तुझे कहां से मिल जायगा ?"

लेकिन इतने पर भी शायद मुझे तू मिल जाय, इस आशा को हृदय में सजोकर मैं तुझे खोज रहा हूं। खोज मे मै आनन्द अनुभव करता हूँ, फिर भी तू कह दे कि 'मैं तुझे नहीं मिलूंगा' तेरे इस प्रहार की वेदना को सहन करने मे मुझे अत्यन्त आनन्द आयगा।

तेरे इस प्रहार से भी मुझे तेरे मिलन जैसा हर्ष होगा। भले ही प्रीति न दे, पर प्रहार कर....मेरे नाथ ! कह दे 'मै तुझे नही मिलूंगा।

६० तू ही चाहना !

मेरे देव !

शास्त्रकारों ने मुझे बताया कि तू सबको देखता है, लेकिन सब तुझे नहीं देख सकते। इतना अधिक छिपा रहने की तुझे क्या आवश्यकता है? जो तुझे चाहते हैं, उनमें भी तू छिपा क्या रहता है?

तू अनन्त समृद्धिशाली है, फिर तुझे डर किस बात का? तेरा प्रेमी तुझ से जो मांगे वह भी तू दे सकता है।

तू प्रकट हो देव!

परन्तु जब मैं तुझसे ऐसी प्रार्थना करता हूँ तब योगी मुझे कहता है "ईश्वर मेरे सामने प्रकट है' तो इसका अर्थ यह हुआ कि जो तुझे प्रिय है, उसे तू दर्शन देता है, दूसरों को नहीं, यही न? लेकिन जो तुझे चाहता है, उसको तू अधीर क्यों बनाता है? तो फिर मैं तुझे नहीं चाहूँगा, तू ही मुझे चाहना। मैं तुझे नहीं देख सकता, तू मुझे देख रहा है बस, मेरे लिए यही काफी है।

६१. परिशोध

मेरे मनोनाथ !

मैंने तुझे अनन्त आकाश में मार्ग-हीन प्रदेश में ढूंढा…गाढ़ तिमिर से आवृत्त गिरी गुफाओं में तेरी खोज की, गगन चुम्बी मन्दिरों के धूप से सुवासित वातावरण में तुझे ढूंढने का प्रयत्न किया, परन्तु गिरि, नदी, सागर कहीं भी तू मुझे नहीं मिला। मैं लौट पड़ा, परन्तु तब तक अंधेरा हो चुका था।

ग्वालों की वंशी के स्वर सुनाई देना बन्द हो गये थे। विहगों का आकाश में उड्डयन भी रुक गया था। मैंने अपनी छोटी सी कुटिया का द्वार खोला। माचिस की सलाई से लघु मन्द दीपक प्रकटाया।

मेरी दृष्टि कुटिया के कोने में गई, ओह ··मेरे नाथ! तू यहाँ ? तुझे देख कर मेरे मुँह से आवाज न निकल सकी। मैंने तुझे पहचान लिया, परन्तु तेरे साथ बात करने के लिए मुझे शब्द न मिले! और मैं स्तब्ध होकर देखता ही रह गया।

६२ प्रेम का रहस्य

हे जगद्गुरु !

उसने आप के चरणों में अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया, फिर भी कहता है— 'मैंने कुछ भी अर्पित नहीं किया' तब तो उसके रहस्य को मैं नहीं समझ सका था, परन्तु आज मैं समझ गया हूँ कि प्रेम की पराकाष्ठा में मनुष्य सब कुछ अर्पण कर देता है, फिर भी मानता है कि 'मैंने कुछ नहीं दिया' इसके विपरीत प्रेम की भूमिका पर जिसने अभी तक कदम भी नहीं रखा, वह यदि किंचित मात्रा भी देता है, तो मानता है, कि उसने बहुत कुछ दे डाला है। नाथ !

आपके प्रेम का रहस्य मैंने समझ लिया आपके साथ जब प्रेम सम्बन्ध बंधता है तब मेरा' कुछ नहीं रहता 'सर्वस्व आपका ही हो जाता है। फिर 'मैंने दिया' ऐसा अभिमान अब भी कैसे ? अब मुझे आप से याचना करने का शेष कुछ नहीं रहा, क्योंकि मैं ही अब आपका हो गया हूँ।

६३. दर्शन दीजिये

हे वात्सल्यनिधि वीतराग देव !

यह सच है कि मुझे आपका ध्यान करना चाहिये, परन्तु मैं आपका ध्यान करूँ, तो कैसे ?

एक बार भी अनुभव की गई आत्मा का स्मरण हो सकता है... मैं आपका स्मरण कैसे करूँ । अतः नाथ ! एक बार दर्शन दीजिये । फिर यदि मैं आपको भूल जाऊँ, तो मुझे आप दण्ड दीजिये । आपका रूप देवों की अपेक्षा भी अनन्तगुना है । ऐसा रूप देख लेने के बाद अवश्य ही मैं जगत् को भूल जाऊँगा ।

कदाचित् आप कहें 'मेरी मूर्ति का ध्यान कर' लेकिन उसका ध्यान भी कैसे करूँ ? कारण की इस सौन्दर्य की अपेक्षा जगत् के दूसरे सौन्दर्य और बढ़ कर है ।

मैं आपकी शरण में आया हूँ....आप मुझे दर्शन दीजिये....दया कीजिये! करुणा कीजिये ! मेरी आत्मा का उद्धार कीजिये ! मेरी आत्मा को पवित्र बनाइये !

मेरी तो आपसे बस एक ही प्रार्थना है । 'आप मुझे दर्शन दीजिये, एक बार दर्शन दीजिये'

६४ समर्पण

हे करुणा सिन्धु !

मेरे पास जो कुछ है, वह आपका ही दिया दान है। इस पर अपने नाम का लेबल लगा कर मैंने आपके साथ द्रोह किया है मेरी प्रत्येक चीज पर आपका अधिकार है। इसका उपयोग आपकी इच्छा के अनुसार करने के लिए मैं बाध्य हूँ। आपकी इच्छा मुझसे सर्वस्व न लेने की हो, तो भी कहिए, इसको मैं आपके चरणों में अर्पित कर देने के लिए तैयार हूँ। जो आपका है और जिसे आपको अर्पित करना है उसमें मुझे इतना अधिक विचार क्या करना है ?

मुझे विश्वास है कि मैं सुखी होऊँ, यही आपका अभिलषित है।

६५. एक आचमन

हे कृपासागर देवाधिदेव !

मेरे हृदय मन्दिर मे मैंने आपकी प्रतिष्ठा की है, परन्तु मेरा मन्दिर" मैं पवित्र नही रख सकता…इसमे कूडे का ढेर लग गया है…

पूजन की सामग्री अस्त-व्यस्त हो गई है, फिर भी मुझे आपका पूजन करना ही है। पूजन के लिए मै उत्सुक हूँ। प्रभात का घटा-रव, धूप की महक, दीपक की झलम-लाहट मुझे आपके पास खीच लाती है

मै सन्देह मे पड़ गया हूँ। आप मुझ पर प्रसन्न न हुए तो ? नाराज हो जाएंगे तो ? यह कल्पना मुझे कंपा देती है…मैं मेरा मन वेहोश हो जाता है।

कृपानाथ !

मेरी इस दुर्बलता के लिए आप मुझे क्षमा करना। मुझे…मेरे हृदय मे तो आपके प्रति पूर्ण प्रेम है, भक्ति है, परन्तु मै आपकी सेवा नही कर पाता…आप मुझ से जितनी अपेक्षा रखते है, उसे मै पूर्ण नही कर सकता।

आप नाराज न हो। कृपा के प्यासे वालक को आपके कृपा सरोवर मे से एकाध आचमन करने देंगे ?

६६ दो मार्ग

है परम पिता !

तेरे पास पहुँचने के अनन्त मार्ग तूने रचे हैं इसी तरह उन मार्गों जैसे ही दूसरे आमक मार्ग माया ने भी बना रखे हैं

मुझे सन्देह है कि क्या मैं तेरे ही मार्ग पर चल रहा हूँ ? वह मार्ग मुझे तेरे पास पहुँचा देगा ? मेरे मन को विश्वास नहीं होता

अँधेरा हो गया है। दीपक का प्रकाश मन्द पड़ गया है तेरे नगर का नामोनिशान दिखाई नहीं देता एक अन्धा मनुष्य जिस तरह चलता है ठीक वैसी ही मेरी दशा हो गई है

नाथ !

अनन्त रहस्यों से पूर्ण तेरे शब्दों को मैं मेरी स्थूल बुद्धि से समझने का प्रयत्न करता हूँ इतना ही नहीं, उसका मैं आग्रही भी हूँ—और यही सच्चा मार्ग है, ऐसा समझने समझाने का प्रयत्न भी करता हूँ मेरी यह प्रवृत्ति गतानुगतिक है

६७. जीवन किसलिये ?

यह जीवन, जीवन को मिटा देने के लिए है, इस बात को हृदय में धारण करके ही तुझे जीना है, इसे तू भूल मत जाना।

अर्थात् तुझे उस स्थिति में पहुँचना है कि जहाँ पहुँच कर जीवन जीने के लिए एक भी बाह्य पदार्थ की आवश्यकता न रहे। जड़-पुद्गल की लेशमात्र भी सहायता के बिना केवल चैतन्य के सहारे ही जीना है।

इसलिए आज से ही जीवन जीने के लिए बाह्य आवश्यकता पर रोक लगा।

जब कोई भी जरूरत नहीं रहेगी, तब जीवन मिट जायगा।

६८ मनकी रचना

यदि तू अपने मन की सात्विक और पवित्र रचना करना चाहता हो तो तुझे इसके लिए अपना

(१) दर्शन
(२) श्रवण और
(३) वाचन

सुधारना पड़ेगे, बदलना पड़ेगे।

वासनोत्तेजक दृश्यो के दर्शन, वासनोत्तेजक शब्दो के श्रवण और अश्लील पुस्तको के वाचन मे तेरा चित्त अपवित्र और निःसत्व बना है।

ऐसा देखना, सुनना और वाचना तू बन्द कर दे। इसके बजाय पवित्र स्थानो और व्यक्तियो के दर्शन कर। भावनोत्तेजक श्रवण कर, उदार विचार धारा का सर्जन करने वाले ग्रन्थो को पढ़।

६६. सहन करो

सुख की पिपासा और दु.ख के प्रति द्वेष, तेरी अंतर आत्मा को शान्ति का समधुर अनुभव नही करने देती शान्ति का सुमधुर अनुभव करने के लिए तुझे सुख का त्याग और दु.ख को सहन करना सीखना होगा।

सुख का तुझे अधिक त्याग भी तो नही करना है, क्योकि सुख अधिक है ही कहाँ ? परिश्रम तो दु.ख को सहन करने मे करना है। क्योंकि दुःख ही अधिक है।

परन्तु यहाँ १००–५० वर्ष की जिन्दगी मे आने वाले दु खो को समतापूर्वक सहन कर लेगा, तो भविष्य काल का अनन्त सुख तेरे चरणो मे आ गिरेगा।

७० कैसा बनना है ?

शिल्पी पत्थर पर टाकी मारने के लिए तयार होता है उसके पूव उसक चित्त मे एक कल्पना-एक आकृति स्पष्ट होती है और उस कल्पना जन्य आकृति को उभारने, प्रकट करने क लिए टाकी से वह पत्थर पर मारता जाता है।

अपने को अपनी आत्मा की गढ़ाइ कैसी करना ह ? अपनी कल्पना सृष्टि म आत्मा का कसा स्वरूप अपने को अच्छा लगता है ? उसी के अनुसार तप, त्याग, ध्यान, ज्ञान आदि की टाकी की चोट लगेगी।

आत्मा की कल्पना—आकृति के भान क बिना जैसे-तैसे टाकी मारते जायेंगे, तो एक बेढगी और आखो को अच्छी न लगने वाली आकृति गढी जायगी।

ऐसा बनना है यह स्पष्ट करो।

७१. उन्नति का उपाय

पतन के गहरे गर्त से निकल कर उन्नति के ऊँचे शिखर पहुँची हुई किसी आत्मा को जब तू देखता है, तब तुझे क्या विचार आता है ?

'उसके पुण्य का उदय है और मेरे पाप का उदय' ऐसा सोचकर मन को समझा तो नहीं लेता ? यदि इस प्रकार मन को समझा लेगा, तो तू उन्नति की सीढ़ी का एकाध सोपान भी न चढ़ सकेगा।

इसके बजाय विचार कर कि-'यह पतन की गहरी खाई में से किस प्रकार निकला ? इसने निकलने के लिए किसका सहारा लिया ? इससे मिलकर तू वह उन्नति के शिखर पर किस प्रकार पहुँचा, उसकी रस-पूर्ण तथा रोमांचक बातें सुन। बस, फिर तू भी उसी प्रकार प्रयत्न में लग जा। उन्नति के शिखर पर जरूर पहुँचेगा।

७२ युद्ध

क्रोध, मान माया और लोभ को शास्त्र कारो ने 'आन्तरशत्रु' कहा है।

शत्रु के सामने, उससे जूझे बिना उसको भगाया नही जा सकता। फिर पक्के बन य शत्रु तो अनन्त काल से अपनी आत्मा पर सतत शासन करते आ रहे है। उनको निकाल भगाने के लिए कैसा घमासान युद्ध करना पड़ेगा, वह क्या समझ मे नही आता ?

युद्ध के लिए मैदान मिल गया है।

युद्ध के लिए शस्त्र सामग्री भी तयार है।

युद्ध के लिए व्यूह रचना करने वाला भी तैयार है। बस कृतनिश्चयी बनकर मैदान मे उतरना मात्र शेष है। यदि इस जीवन म कुछ न किया, तो फिर दीर्घातिदीर्घ काल तक रोना ही शेष रहेगा "

७३. भावना

"मैं आत्मा हूँ, शरीर नहीं हूँ। मैं शरीर से भिन्न हूँ। शरीर के धर्म भिन्न हैं, मेरे धर्म भिन्न हैं....."

इस भावना से भावित होने की आवश्यकता है। जहाँ तक इस भावना से भावित नही होगा, वहा तक तेरा बहिर्भाव रुकेगा नही। अन्तर्भाव प्रकट नही होगा।

बहिरात्मभाव का दूसरा नाम ही ससार है। इस ससार से मुक्त करने वाला है, अन्तरात्मभाव। जैसे ही अन्तरात्मभाव आने लगेगा, वैसे ही वासनाएँ नदारद होने लगेगी।

इसलिये उपर्युक्त भावना से अधिक-अधिक भावित होने का प्रयत्न करना।

७४ सच्चा ज्ञान

तुझे ऐसा ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये कि जो ज्ञान तुझे दुनिया में किस प्रकार सात्त्विक और पवित्र जीवन जीना, यह सिखावे।

उसमें भी शारीरिक दुःखों की अपेक्षा जीव मानसिक दुःखों से अधिक ग्रस्त रहता है। इन मानसिक दुःखों को दूर करने की शक्ति सच्चे ज्ञान में रही हुई है। अगर हम मानसिक दुःखों को मार भगाने का सामर्थ्य रखते हों, तो समझना चाहिये कि हमको सच्चा ज्ञान प्राप्त हो गया।

ज्ञान में जैसे जैसे वृद्धि होती जाती है, वैसे वैसे यदि मानसिक दुःख भी घटते जाते हों तो? अपने अन्तर में निरीक्षण करना ज्ञान याने गहरी सच्ची समझ।

७५. मन: स्थिरता

तेरा मन स्थिर नहीं रहता ऐसी तेरी शिकायत है। अच्छा तो तुझे अपना मन स्थिर बनाना है? निश्चित रूप से बनाना है? तो तेरे मन को भटकाने वाले स्थानों को कम कर। बार-बार जिनमें मन जाता हो, ऐसे विषयों के प्रति विराग का अभ्यास कर और उनका त्याग कर

मन को आकर्षित करने वाले पवित्र-उच्च स्थान खड़े कर। मन को बार-बार वहाँ लेजा और उन स्थानों में घन्टों तक बिठा रख। अवश्य ही तेरा मन स्थिर और पवित्र बनेगा।

कृत निश्चयी बन। 'मन स्थिर-पवित्र हो सकता है' ऐसे आन्तर विश्वास का अभ्यास कर के प्रयत्न कर।

७६ गुण और पुण्य

तुम किसको चाहते हो—पुण्य को या गुणों को? पुण्य को, परन्तु यदि गुण न होंगे तो तेरी दुर्गति हो जायगी।

आपा रे—दुर्गुणों को यदि पुण्य का सहारा मिल जाय, तो जीव की बारह ही बज जाय। पुण्य का सहारा पाकर वे दोष जीव से पापकृत्य करावेंगे। जिसके परिणाम स्वरूप जब पापकर्म का उदय आवेगा तब दुःख के पहाड़ ही टूट पड़ेंगे तेरे पर।

परन्तु गुण तुझसे पापोदय में भी अकृत्य नहीं करावेंगे। पुण्योदय को धर्म कार्यों में जोड़ेंगे जिसका परिणाम होगा पुण्य का बन्ध और सुख का सागर।

घाती कर्म के क्षयोपशम द्वारा तू तेरे आत्म तेज को प्रकट कर।

७८ आत्मा के रोग

शरीर के रोगों को बताने वाले के प्रति प्रेम जागता है न? शरीर में सूक्ष्म से भी सूक्ष्म रोग का बता देने वाले वैद्य अथवा डॉक्टर की तुम 'निदान कुशल' कहकर प्रशंसा करते हो!

आत्मा के रोगों को बताने वाला अप्रिय लगता है! तुम्हारी आत्मा का कोई रोग तुम्हें न बतावे, केवल तुम्हारी आत्मा की प्रशंसा ही किया करे, तो वह तुम्हें प्रिय लगता है।

जब तक यह स्थिति न सुधरेगी, तब तक आत्मविशुद्धि नहीं हो सकती। तब तक धर्म की आराधना भी नहीं हो सकती।

धर्म आत्मरोग की औषधि है। आत्मा के रोग ही नहीं दिखते हों, तो फिर औषधि लेने की तो बात ही कहाँ पैदा होती है?

७६. आनन्द

क्या तू स्वर्ग का आनन्द चाहता है?
परन्तु स्वर्ग का आनन्द निरापद नहीं है। भय की भीषण विभीषिकाएँ उस आनन्द के चारो ओर दिखाई देती है...तू स्वर्ग के आनन्द मे भान भूला नही कि भय के ये भीषण राक्षस तुझे चबा जायेगे!

आनन्द की खोज कर, निर्भय आनन्द की खोज कर! ऐसा आनन्द, जिसकी अनुभूति के पीछे कोई भावी दुःख निर्मित नही होता। आनन्द की जिस अनुभूति के पीछे किसी भावी दुःख का निर्माण होता हो, ऐसे आनन्द का त्याग करना अनिवार्य है। तुझे ऐसे आनन्द की लिप्सा का त्याग कर ही देना चाहिये।

८० शरण

जो तुझे शरण देने योग्य नहीं उनको भी तूने शरण देने वाला मान लिया है। शरण देने वाला समझ कर उनको तूने अपने प्रेम और विश्वास का प्रतिदान दिया है।

परन्तु निश्चय समझ ले कि तीनों लोकों में देवाधिदेव परमात्मा के अतिरिक्त दूसरा कोई तुझे शरण देने वाला नहीं है। इनको छोड़कर तू चाहे जहाँ जा, शरण मिलने वाली नहीं है। कदाचित् शरण मिलती प्रतीत होगी भी तो वह बकरे को कसाई के घर मिलने वाली शरण जैसी ही होगी। कसाई भी बकरे को शरण देता है, खिलाता पिलाता और नहलाता है, परन्तु अन्त में?

जगत् के विषयों की शरण लेने वालों की भी अन्त में ऐसी ही कदर्थना होती है।

८१. महात्मा का परिचय

जगत् के साथ परिचय प्राप्त किये बिना, तू शान्ति नहीं पा सकता। जगत् का अधिकाधिक परिचय तेरी शान्ति छीन लेगा।

जगत् के साथ परिचय प्राप्त करने के लिए तुझे अपनी अन्तरात्मा के साथ परिचय प्राप्त करना पड़ेगा, परन्तु महात्माओं के साथ परिचय प्राप्त किये बिना तेरा अन्तरात्मा के साथ परिचय नहीं हो सकता। इसलिए महात्मा-पुरुषों से परिचयप्राप्त करना शान्ति· परम शान्ति प्राप्त करने का श्रेष्ठ मार्ग है।

परन्तु महात्माओं से परिचय प्राप्त करने का मतलब उनको वन्दन कर लेना मात्र ही नहीं है, बल्कि उसके साथ-साथ उनकी पर्युपासना करना तथा उनके एक-एक वचन को गंभीरता से समझने का प्रयत्न करना भी है।

८२ जय वीयराय?

वीतराग की जय अर्थात् धर्म तीर्थ की जय, धर्म तीर्थ की जय अर्थात् मोक्ष मार्ग की जय और मोक्षमार्ग की जय अर्थात् श्रमणमार्ग की जय।

तूने 'जय वीयराय' की उद्घोषणा की इसका अर्थ है, वीतराग के कार्यों में सहयोग देने तथा वीतराग की वाणी के परिपालन हेतु अपनी स्वीकृति देना। इसलिए अब तेरे ऊपर यह जवाबदारी आ गई है कि वीतराग के कार्य और वाणी के विरुद्ध तेरे द्वारा कुछ भी न किया जाय। अब तू ऐसा कोई भी कार्य नहीं कर सकता कि जिससे वीतराग के कार्य में किसी प्रकार का कोई विघ्न पैदा हो।

तूने जिसका जयोच्चार किया, उसका तुझे अनुसरण करना चाहिए इस बात को तुझे स्वयं को जांचना चाहिए।

८३. भव-वैराग्य

सर्वगुण और सर्वधर्म 'भववैराग्य' पर आधारित है, इसलिए जीवन मे सर्वप्रथम 'भववैराग्य' को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये। उसे प्राप्त करने के लिए निम्न-लिखित चार बातो पर ध्यान केन्द्रित करना आवश्यक है—

(१) भवस्वरूप का चिन्तन

(२) कर्म विपाक का विचार

(३) आत्मा के शुद्ध स्वरूप का भान

(४) परमात्मा की आज्ञा के प्रति बहुमान

ये चारो बाते यदि मन मे रचपच जाय तो भव वैराग्य की प्राप्ति भी निकट ही समझो। फिर दूसरे धर्म अथवा गुणो के लिए मेहनत नही करनी पडेगी। अनायास ही गुण आजायेगे और धर्म की ओर प्रवृत्ति होगी।

८४ आत्मस्मृति

आत्मा की ओर उन्मुख हुये बिना धर्म साधना के आनन्द का अनुभव नहीं किया जा सकता। कारण कि धर्म साधना आत्मोन्मुख होने के लिए ही है।

अरे! आत्मा को लक्ष्य बनाकर की जाने वाली क्रिया ही 'धर्म क्रिया' कहलाती है। यदि आत्मा के लक्ष्य का प्राप्त किये बिना ही जीवन का अन्त आ जायगा, तो परलोक में क्या होगा?

इसलिये प्रत्येक क्रिया के प्रारम्भ में–'मैं आत्मा हूँ मुझे मेरी आत्मा को विशुद्ध बनाना है' यह विचार होना चाहिये।

८५. सत्कार्य की प्रशंसा

दूसरे जीव के सत्कार्यों की प्रशंसा तुझे करनी चाहिये। इससे दूसरी आत्मा को अधिकाधिक सत्कार्य करने की प्रेरणा मिलती है और तेरे में गुणानुरागिता का गुण विकसित होता है। आत्मा को द्विगुणित लाभ होता है।

फिर तू भी तो अपने सत्कार्यों की प्रशंसा प्राप्त करने की इच्छा रखता है इसलिए तुझे भी दूसरों के सत्कार्यों की प्रशंसा करनी ही चाहिये।

सत्कार्य परमात्मा का मार्ग है। सत्कार्यों की प्रशंसा करना, परमात्मा की प्रशंसा करना कहलाता है। इसी प्रकार परमात्मा की कृपा का पात्र बना जा सकता है।

८६ चिन्तकों के मध्य संघर्ष

शास्त्र और व्यवहार का यही ज्ञान है परन्तु भिन्न भिन्न क्षयोपशम वाले चिन्तक जब शास्त्र का भिन्न भिन्न अर्थ करते हैं, तब सामान्य जनता भ्रम में पड़ जाती है। फिर भी मनुष्य अपने श्रद्धेय पुरुष पर विश्वास रखकर निश्चिन्त हो सकता है।

परन्तु एक चिन्तक जब दूसरे चिन्तक के अभिप्राय को सहन नहीं करता, तब संघ-समाज में भारी वातावरण बन जाता है। दूसरे का अभिप्राय (शास्त्र अर्थ) उचित है या अनुचित इस बात का विचार बहुत ही मध्यस्थता पूर्वक करना चाहिये और वह भी संघ की शान्ति भंग न हो इस प्रकार। तभी संघ में शान्ति रहे और मध्यस्थ दृष्टि वाले आत्म धर्म के मार्ग के प्रति आकर्षित होंगे।

८७. धर्म श्रवण

नल खुला रखकर, बाल्टी उसके नीचे न रखते हुए, एक तरफ रखी जाय तो क्या वह भरेगी ? और इस तरह पानी भरने वाली आत्मा समझदार मानी जायगी ? नहीं।

तुम धर्म का श्रवण किस प्रकार करते हो, ? जब सद्गुरु धर्मवाणी रूपी जल के नल को खुला रखते है, तब तुम अपनी मनरूपी बाल्टी को नल के नीचे रखते हो या एक तरफ ?

धर्म श्रवण करते समय एकाग्र बनो। सद्गुरु के मुख से निकलती वाणी को मन मे झेल लो। इसमे से एक बूंद भी बाहर न गिरने पावे, इसकी सावधानी रखो।
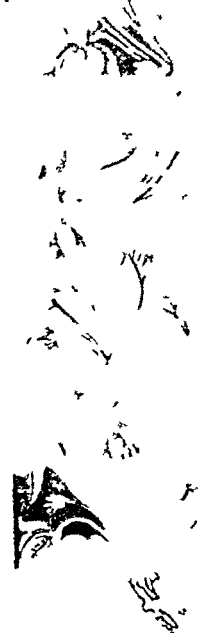
८८ सच्चा सम्बन्ध

"अरिहन्त परमात्मा की अचिन्त्य शक्ति का लाभ प्राप्त करने के लिए अपने को उनके साथ कोई सच्चा सम्बन्ध बाँधना चाहिये और अपनी स्थूल बुद्धि के विचारों के अनुसार उनका अनुसरण करना चाहिये', इस प्रकार का आग्रह छोड देना चाहिये।

वह अनन्त ज्ञानी है। अनन्त शक्तिशाली है अपनी तमाम मुश्किलें उसको ज्ञात है। अपने को बहुत अधिक उतावल करने की आवश्यकता नही। वह जो कुछ करेगा, वह ठीक ही करेगा, इस श्रद्धा के साथ उसकी उपासना में मग्न हो जाना चाहिये।

८६. विचार

जब हम किसी संकट में फंस जाते हैं, तब उसका कारण ढूंढने का प्रयत्न करते हैं, 'यह पूर्व भव के पापों का फल है' ऐसा सोचकर तुरन्त अपने मन को समझा लेते हैं। परिणाम यह होता है कि अपनी विचारशीलता कम होती जाती है और वर्तमान भूलों की ओर से हमारा ध्यान हट जाता है, जोकि वांछनीय नहीं है। परन्तु .

दूसरों की भूलों को क्षमा करने के लिए, जरूर यह उनके पूर्वकृत कर्मों का परिणाम है, यह जीव तो भला है,' ऐसा विचार करना आवश्यक है।

९०. महर्षिवचन

दिव्यद्रष्टा महर्षिओं के वचनों का यदि कभी हम अपनी स्थूल बुद्धि से न समझ सकें तो इसको हमारी अक्षमता मंजूर करना चाहिये।

बुद्धि का अभिमान कभी कभी महर्षिओं के वचनों की भी अवगणना करने का दुष्कृत्य कर बैठता है।

जहाँ बुद्धि न पहुँच सके वहाँ श्रद्धा स्थापित करके महर्षिओं के वचनों पर टिके रहना चाहिये।

९१. वैरागी

वैराग्य अर्थात् ससार पर द्वेष, ऐसा अर्थ मत करना ! वैराग्य का अर्थ है, राग और द्वेष के आग्रह मे कमी हो जाना।

जिन आत्माओ को विषयो के प्रति राग और द्वेष हो, वैरागी तो उनके प्रति भी करुणा भाव रखता है और चाहता है कि 'मैं आत्माओ को किस प्रकार राग-द्वेष से बचालूँ।' यदि वैरागी को भी दूसरे जीवो के प्रति द्वेष होता है, तो समझना चाहिये कि मन की गहराई मे कही विषयो के प्रति उसका राग शेष है।

वैरागी मे द्वेष नही होना चाहिये।

९२ वासना और भावना

अंतःकरण में तुझे जो जो वासनाएँ सताती रहती हों, उनसे विरुद्ध भावनाओं में तू अपने चित्त को बार बार रमण करा। जैसे ही कोई वासना जगे कि तत्क्षण तू उसकी विरोधी पवित्र भावना द्वारा उसको तुरन्त भगा दे।

आन्तरिक पतन में से उबरने का इसके सिवाय दूसरा कोई मार्ग दिखाई नहीं देता। जबकि उपयुक्त तरीका बहुत ही कारगर साबित होता है, ऐसा मेरा अपना अनुभव है, हकीकत है। इसलिये तुझे यह तरीका बता रहा हूँ। तू प्रयत्न कर श्रद्धा रखकर प्रयत्न कर, सफलता मिलेगी। वासनाओं के ज्वार को देखकर हिम्मत मत हार जाना।

९३. आन्तर-आनन्द

बाह्य दृष्टि बन्द हो तो आन्तर दृष्टि खुले।

बाह्यदृष्टि बन्द करना माने, अधिक देखना और सुनना बन्द करना। जगत् के जड पदार्थों को देखने और सुनने मे जब तक रस आता रहेगा, तब तक आन्तर दृष्टि नही खुलेगी।

जैसे-जैसे तू जगत् का परिचय (जड पदार्थों के साथ सयोग) कम करेगा, वैसे-वैसे तुझे अन्त: करण मे जाने का मार्ग मिलेगा।

जगत् के परिचय मे तू जिस सुख का अनुभव करता है, उसकी अपेक्षा कई गुना अधिक मधुर अनुभव तुझे अन्तः करण मे प्राप्त होगे। स्थिर बन! स्थिरता तुझे सुख के खजाने दिखायेगी।

६४ मैत्री

जगत म जिस किसी के भी साथ तू मैत्री करेगा, तुझे उस व्यक्ति के बहुत से दोषों को सहन करना पड़ेगा और बहुत से व्यक्तिगत मामलों म तुझे मौन धारण करना होगा।

जो कोई तेरे दोषों को सहन नहीं करता होगा तेरे किन्हीं विशेष मन्तव्यों पर जो प्रहार करता होगा, तेरे गुणों का अनुवाद न करता होगा, क्या उसके साथ तू मैत्री सम्बन्ध बनाये रख सकता है ? नहीं।

मैत्री के लिए केवल भावना काम नहीं देती। मैत्री को साबित करने के लिए तुझे कुछ ठोस भी कर दिखाना होगा।

९५. विघ्न विजय

मानसिक विघ्नो से भयभीत होकर तू पीछे मत हटना क्योकि ऐसा कोई सत कार्य नही, जिसमे विघ्न न आते हो।

विघ्नो का विचार करके तू ठिठक मत जा, बल्कि उन विघ्नो पर विजय किस प्रकार प्राप्त की जाय, इन विचारो मे निमग्न हो जा।

क्या विघ्नो पर विजय प्राप्त करने के कोई मार्ग नही है? है, असख्य मार्ग है! तू विचार करेगा....अच्छी तरह विचार करेगा, तो तुझे ये मार्ग जरूर दिखाई देगे। जिनेश्वर भगवन्तो ने अपार कृपाकर के ये मार्ग प्रतिपादित किये है....उनमे से इन विघ्नों पर विजय प्राप्त करने के जो भी मार्ग तुझे दिखाई दे, उस पर श्रद्धा रखकर तू प्रयाण कर।

९६ दु ख परिहार

अपने सुख के लिए तो तू किसी को दु ख

नही देता ? यदि देता है, तो तुझे यह समझना चाहिये कि जिस प्रकार दु ख तुझे प्रिय नही, उसी प्रकार किसी भी जीव को वह प्रिय नही। तो फिर तेरे द्वारा किसी अन्य जीव को दु ख कैसे दिया जा सकता है ?

तेरे मन म प्रश्न उठेगा कि दूसरे को दु ख दिये बिना क्या सुखी जीवन जिया जा सकता है ? उत्तर है हाँ। किसी को भी दु ख दिये बिना परम सुखी जीवन जीने के मार्ग परम-पिता परमात्मा ने बताये हैं।

अब हमारा तुझसे प्रश्न है कि क्या तुझे इस प्रकार का जीवन जीना है ?

९७. साधना की कुंजी

यदि तू साधना करना चाहता है, तो उसके लिए तेरा चित्त स्वच्छ और स्वस्थ होना चाहिये। कारण कि साधना के केन्द्र स्थान में परमात्मतत्त्व है। इस परमात्मतत्त्व का प्रतिबिम्ब जब हमारे चित्त पर पड़ता है, तभी साधना के मार्ग में गति आती है।

अनिर्मल और अस्वस्थ चित्त पर परमात्मतत्त्व का प्रतिबिम्ब कैसे पड़ सकता है? गन्दे पानी में जरा अपना मुँह देखकर तो देखो!

चित्त को स्वस्थ करने के लिए तुझे परमात्मतत्त्व पर शंका रहित श्रद्धा स्थापित करनी पड़ेगी। बिना श्रद्धा के चित्त की स्वस्थता प्राप्त की ही नहीं जा सकती।

६८ आत्म प्राप्ति

तुझे क्या प्राप्त करना है ? और क्या प्राप्त करने के लिए तू पुरुषार्थ कर रहा है, क्या कभी इस बात पर विचार किया है ?

यहाँ प्राप्त करने योग्य यदि कुछ है, तो वह केवल तेरी आत्मा है। आत्मा को प्राप्त करने के पुरुषार्थ के अतिरिक्त दूसरा कोई पुरुषार्थ करने योग्य नही।

आत्मा के सिवाय कुछ भी प्राप्त करने योग्य प्रतीत नही हो, तभी योग के मार्ग में तेरे प्रयाण का प्रारम्भ होगा। आत्मा को ही प्राप्त करने के पुरुषार्थ में जब तू लग जायगा, तब तू योगी बनेगा।

योगी बने बिना आत्मा की प्राप्ति नही होगी आत्मा की प्राप्ति अर्थात आत्मा की कर्ममुक्त अवस्था की प्राप्ति।

९९. दु:ख की औषध

दूसरा कोई तुझे दुःखी नही बनाता, तेरी अपनी वासनाएँ ही तुझे दुःखी बनाती है। जिस दिन तेरी वासनाएँ नष्ट हो जायेगी उस दिन तुझे कोई दुःख नही रहेगा।

तेरे मन मे मान प्राप्ति की वासना है और यदि किसी व्यक्ति ने तुझे मान नही दिया, तो तू उसको दुःख देने वाला मान बैठता है। लेकिन वास्तव मे अगर तेरे मे मान प्राप्ति की वासना ही नही होती, तो तू उसको दुःख देने वाला नही मानता।

इसलिये जब-जब तुझे लगे कि "मै दुःखी हूँ" तब-तब उसके पीछे कार्य करती हुई वासना को ढूंढ निकालना और उसको निर्मूल करने का उपाय करना तब कोई तुझे दुःख देने वाला प्रतीत नही होगा।

१०० एक अनुभव

मेरी बात उसने नहा मानी मेरे विचार उसने पसंद नही किये, तो मुझे दुःख हुआ! परंतु क्यो? मुझे दुःख देने वाला कौन? मैने खूब सोचा

"मेरे विचार उसको मानना चाहिये, उसको रुचना चाहिये' इस प्रकार का विचार भी एक प्रकार की वासना ही है, ऐसा मुझे प्रतीत हुआ। मैने उस पर बारबार विचार किया। 'मुझे उसके समक्ष अपने विचारो को उसकी कल्याण कामना से ही रखना चाहिये फिर उनको मानना न मानना, यह उसकी इच्छा।

इन विचारो ने मेरे पर जादू का सा असर किया! अब, जब कोई मेरी बात को नही मानता है अथवा वह उसको नही रुचती है तो मुझे उसका दुःख नही होता।

१०१. परमात्मा की प्राप्ति

कभी अत्यन्त प्यास मे पानी बिना व्याकुलता अनुभव की है ? कभी भयानक गर्मी में हवा के बिना बेचैनी अनुभव की है ? अत्यधिक भूख लगने पर भोजन के अभाव मे तीव्र पीड़ा का अनुभव कभी हुआ है ?

परमात्मा के बिना, परमात्मतत्त्व की प्राप्ति के बिना क्या कभी वैसी ही बेचैनी अनुभव की है ? परमात्मतत्त्व के बिना जब हम क्षण मात्र भी सुखचैन का अनुभव न कर सकें, तब समझना चाहिये कि कुछ ही क्षणो मे हमको परमात्मतत्त्व की प्राप्ति होगी।

परमात्मतत्त्व की प्राप्ति के सिवाय जब हमको दूसरी कोई भी इच्छा न रहे, तभी हम उसकी प्राप्ति के लिए कठोर पुरुषार्थ कर सकेंगे।

१०२ प्रेम-पथ

तुझे गुरुतत्त्व के प्रति प्रेम है ? यदि है तो कैसा ? गुरु से तू क्या क्या अपेक्षाएँ रखता है ?

जिस पर हमारा प्रेम है, उसके प्रति हमारे क्या क्या कर्तव्य है इतना ही विचार हमको आवे, तो समझना चाहिये कि हमारा यह प्रेम सच्चा है और यही प्रेम अखंडित रह सकता है ।

जिसके प्रति तुझे प्रेम है उसकी ओर से यदि तू किसी तरह की अपेक्षा रखेगा, तो निश्चित है कि तू प्रेम टिका नही सकेगा और एक दिन उसी के प्रति तू द्वेषी बन जायगा ।

१०३. तुझे देख रहा है !

अनन्त अनन्त सिद्ध भगवन्त प्रतिक्षण तुझे देख रहे हैं, क्या तुझे इसका ध्यान है ? वे तेरे सामने देख रहे है और तू जगत् की तरफ देख रहा है ! कैसी गंभीर भूल हो रही है !

श्री सीमन्धर स्वामी आदि विचरण करते तीर्थंकर भगवन्त तुझे देख रहे है, यह विचार भी तुझे आता है ?

जगत् की तरफ देखना तो बन्द करदे भाई ! और तुझे देख रहे, परमात्मतत्त्व की ओर देख ! उनके साथ सम्बन्ध स्थापित कर।

इस सम्बन्ध को स्थापित करने से तेरे मे अचिन्त्य शक्तियाँ जाग्रत होगी… इन्ही शक्तियो द्वारा तू परमात्मतत्त्व में अभेदरूप मे लीन हो सकेगा।

१०४ दुष्ट विचार

रास्ते मे चलते हुए अचानक गड्ढा आ जाय और हम उसमे गिर पडे तब कितना दुख होता है देखकर न चले उसका कितना अधिक पश्चाताप होता है ?

इसी प्रकार दुष्ट विचार के गड्ढे मे यदि गिर जाय, तो कितना अधिक दुख कितना अधिक पश्चाताप होता है।

दुष्ट विचारो के याद मे होते वाले तीव्र दुख और पश्चात्ताप के बिना हम उस विचार से विमुख नही होगे।

दुष्ट विचार मानो गहरा कुआ। ऐसी आत्मप्रतीति हुए बिना तो कुए में ही गिरना होगा।

दुष्ट विचारो को रोकने की उत्कट इच्छा के बिना दुष्ट विचार रुकने के नही।

१०५. मनुष्य

'न तान् मनुष्यान् गणयेत्'....भगवन्त उमास्वाति का यह कथन जब-जब स्मरण हो आता है, तब-तब दिल धडकने लगता है।....क्या मै मनुष्य नही हूँ? क्या मनुष्य के रूप मे मेरी गिनती नही होती?....उत्तर मिलता है, नही।

जब तक वैषयिक सुख मेरे पुरुषार्थ के लक्ष्य बने रहेगे, तब तक मै मनुष्य नही। 'विषयरति' मनुष्य को शोभा नही देती। कदम कदम पर जहाँ मृत्यु की झनकार सुनाई देती हो, वहाँ विषयरति?

अपनी रति-आनन्द के पात्र विषय नही, बल्कि परमात्मा तीर्थंकर देव है। परमात्मा के प्रति रति रख सकेगे, तो ही हम मनुष्य है, अन्यथा नही!

१०६ आन्तर निरीक्षण

तुझे आन्तर निरीक्षण करना चाहिये उसमें तुझे खोजाना चाहिये। जसे जमे तू आतर निरीक्षण करेगा, वसे-वमे इस दुनिया पर से तरी आसक्ति भी दूर होती जायगी। फिर दुनिया का विचार तब भी तेरे चित्त में प्रवेश नही करेगा।

यदि तू गहराई म प्रवेश करेगा, तो एक ऐसे विराट् प्रदेश म पहुँच जायगा, जहा स्वग है नरक है और मोक्ष भी है! तू जो कुछ चाहेगा, जो कुछ आवश्यक होगा, तुझे वहाँ मिल जायगा।

इतना ध्यान में रखना कि गहराई म स्थित इस अगम प्रदेश पर परमात्मा का राज्य है इसकी स्मति प्रतिक्षण रखना।

१०७. जगत् के सम्बन्ध

भौतिक जगत् के आनन्द की अपेक्षा आन्तर जगत् के आनन्द की अनुभूति अपूर्व है, चिर-स्थायी है.. अभयप्रद है।

तू कभी एकाग्रचार तो इस आन्तर जगत् के आनन्द का अनुभव कर। विश्वास रख....तुझे आनन्द अवश्य मिलेगा, आनन्द के सागर में मनमानी मौज उड़ाने का अव-सर मिलेगा।

इसलिए जगत् के सम्बन्धों से अपने को पृथक् करले। शरीर के फोड़े को काट डालने मे वेदना तो होगी ही; लेकिन उसको तो काटने मे ही भला है! जगत् के सम्बन्धों को तोड़ने में तो इससे भी अधिक पीड़ा होगी, परन्तु उसके बाद....अपूर्व आनन्द!

१०८ स्वभाव दशा

स्वभाव दशा के अपने लक्ष्य को तुझे चूकना नही चाहिये। अपने सामने घटित प्रसगों को यदि तू स्वभाव दशा मे देखेगा, तो अनेक मानसिक विषमताओ से बच सकेगा।

यद्यपि विभाव दशा के आकर्षण प्रबल है और वे जीव को स्वभावदशा से विचलित भी कर देते हैं, परन्तु एक बार स्वभाव की तरफ प्रवृत्ति हो जाने के बाद हृदय विभाव की ओर आकर्षित नही होता। 'स्व' में ही लीन बनाने की कला हस्तगत कर लेना चाहिये।

१०६. आत्मा का क्या है ?

तेरी आत्मा से भिन्न, जड या चेतन पदार्थों की प्राप्ति मे तू अपनी पूर्णता देखता है, कैसी भयकर भूल हो रही है यह तेरी !

तेरा कर्तव्य निश्चित ही इससे भिन्न है। तेरे पास जो पदार्थ नही है, उनकी स्पृहा तो तुझे नही ही करना है, परन्तु जो है, उनका भी तुझे त्याग करना है !

दूसरे के पास अपने से अधिक जड पदार्थों को देखकर, तुझे उनकी अभिलाषा नही करना चाहिये....बल्कि उनकी स्पृहा तेरे चित्त मे जागृत न हो जाय इसके लिए हमेशा सावधान रहना है।

तू आत्मा है। आत्मा क्या है, इसीका विचार कर।

११० प्रतिकूल सयोग

प्रतिकूल सयोग तेरे लिए उपकारी है।

प्रतिकूल सयोगों म तू जितना आत्म चिन्तन कर सकता है, उतना अनुकूल-सयोगो म नहीं कर सकता।

अस्वस्थ चित्त मत बन अधीर मत हो। किसी समय जो व्यक्ति तेरे अनुकूल थे, वे ही आज प्रतिकूल हैं कारण, जीवो के भाव परिवतनशील है।

तू खुद अपना विचार कर। क्या तेरे भाव दूसरों के प्रति एक जैसे ही रहे हैं?

अत प्रतिकूल सयोगों का तत्त्वरमणता और परमात्म ध्यान का उपयुक्त अवसर समझ।

१११. दोष दृष्टि

जिनके प्रति तू अपना अनुराग स्थिर रखना चाहता हो, उनके दोष मत देख। तू उनके दोप सुन भी मत। क्योंकि दोपदर्शन द्वेष जनक है।

जैसे ही उनके दोष देखना तूने प्रारम्भ किया नही कि तेरे चित्त मे उनके प्रति नफरत का भाव जगने लगेगा.......अप्रीति प्रकट होगी और इसके प्रति तू द्वेषी वन जायगा। ऐसा होने पर उनको तो नुकसान जब होगा, तब होगा परन्तु तेरा नुकसान तो तुरन्त ही हो जायगा ! तेरा चित्त उद्विग्न हो जायगा.... अप्रसन्न हो जायगा।

भले ही दूसरे तेरे दोष देखें, लेकिन यदि तू भी तेरे दोप देखने वालो के दोष देखने लग जायगा, तो फिर दूसरों में और तुझ में फर्क क्या रहेगा ? फिर उनको गुनहगार कहने का तुझे कोई अधिकार नही।

दोष दर्शन का भयंकर रोग व्यापक बनता जा रहा है। इस रोग से सैकड़ों साधक कष्ट पा रहे हैं। इनकी चपट में तू न आ जाय, इसके लिए जाग्रत रहना।

दूसरों के गुण-दोष में प्रवृत्त होते हुए मेरे चित्त रोक।

११२. तू साधक ?

तेरे हृदय मे परमात्म-प्रीति नही जगी।

परमात्मा के सान्निध्य मे घटो व्यतीत करना तुझे अच्छा नही लगता। जो थोडे बहुत क्षण तू उनके सान्निध्य मे व्यतीत करता है, उसमे भी तेरा चित्त परमात्मा के प्रति अनरक्त नही होता।

कैसा साधक है तू! किसकी साधना कर रहा है? गतानुगतिक साधना करके तू साधक कहलाने का दावा करता है? अपने दूसरे साधको के दल मे रहने के कारण ही क्या तू साधक है?

परमात्मा को देखकर क्या तेरे हृदय मे आनन्द का सचार होता है... आनन्द की धारा प्रवाहित होती है? नही? तो फिर क्या यो ही वर्ष पर वर्ष बिता रहा है? अन्तरात्मा के आनन्द की अनुभूति के बिना तू किस प्रकार जगत् के सामने साधुता का दिखावा करता है?

विषयो के उपभोग का आनन्द, मन की अनेक धारणाओ की सिद्धि का आनन्द तुच्छ है। तुझे तो आंतर गुणो की प्राप्ति के आनन्द का अनुभव करना चाहिये।

११३ घटमाल (रेंहट)

कभी वे तुझे चाहते थे और उनसे नफरत करते थे, परन्तु आज वे ही तुझसे नफरत और उनसे प्रेम करने लगे हैं। तू क्या उनके स्नेह को प्राप्त करने के लिए खिन्न है? क्षण में रागी और क्षण में द्वेषी बनने वालों के पीछे तू क्यों बेचैन होता है? जगत् का दस्तूर ही ऐसा है। इसलिए तू दूसरों के राग-द्वेष की चिन्ता किये बिना अपने स्वयं के राग-द्वेष को कम करने का पुरुषार्थ कर।

तुझे कहाँ उनके साथ लाखों वर्ष बिताना है। ५ ७५ वर्ष भी तो नहीं! फिर क्यों विह्वल बनता है? जैसे जैसे तू अपने राग-द्वेष को कम करता जायगा, वैसे-वैसे सारा वातावरण शुभ होता जायगा, परन्तु विशुद्धि की ओर बढ़ती हुई आत्मा को तो इसकी भी चिन्ता नहीं।

११४. दृष्टि बिन्दु

तेरी यह वचना मुझे असह्य लगती है। एक तो तूने अपनी बदनीयत के कारण उसके प्रति अन्याय किया और फिर कहता है कि.. 'सब कुछ पुण्याधीन है!' क्या अल्प-पुण्य होने के कारण ही वह तेरे अन्याय का शिकार हुआ?

तेरी ओर से, अपनी मिथ्यावासनाओं के कारण, तूने जिसका अपराध किया है, उसको तू पाप-पुण्य का उपदेश मत दे....अपने पाप-पुण्य को देख।

तेरे पर जब आपत्तियाँ बरसेंगी और आपत्तियाँ ढाने वाले ही कहेंगे–'तेरे पाप के परिणाम स्वरूप आई हैं, ये आपत्तियाँ, इसलिये समता रख!' उस समय समता रख कर देखना! कैसी रहती है, कैसी समता रहती है, उस समय बताना!

११५ द्वैत-अद्वैत

जब तक द्वैत है, द्वैत का मोह है, तब तक आन्तर बाह्य विक्षेप आयेंगे ही ।

अद्वैत प्रकट न हो, पर की अपेक्षा न टूटे, तब तक दुःख रहेगा ही। नमिराजर्षि ने संसार का त्याग किस प्रकार किया? द्वैत में उन्होंने दुःख देखा, अद्वैत में उन्होंने सुख का अनुभव किया। इसी कारण वे राज्य का त्याग कर निकल पड़े।

तूने भी घरबार छोड़ा है परन्तु अब तूने नये द्वैत जगत् में प्रवेश कर लिया है, इस लिये यहाँ भी तू मानसिक क्लेश के अनुभव से नहीं बच सकता है।

पर पदार्थों और पर व्यक्तियों के अनुराग की अपेक्षा छोड़ दे, यह पुरोलत है दुःख का निमन्त्रण देने वाली है। तेरी आत्मा में से ही आनन्द की अनुभूति के प्रयत्न में लग जा। तू बहुत सुख अनुभव करेगा।

११६. भय-अभय

भय ? किसका भय ? अपकीर्ति का ?

कितना अज्ञान है, यह तेरा ! क्या अपकीर्ति का भय भी रखा जाना चाहिये ? पूर्व जन्म-कृत पाप का उदय यदि लिखा ही है, तो वह होगा ही, उसमें डरना क्यों ? जो भाव अवश्यभावी है, उनके पीछे चित्त को भय तथा शोक मे विह्वल क्यो बनाना चाहिये ।

निर्भय बन । बाह्य भयो से भयभीत होकर अपनी आंतरिक शान्ति को मत गंवा। अभय का उपहार देने वाले जिनेश्वर भगवान् की शरण मे जा ।

यदि तू सन्मार्ग पर है, तो डरने की आवश्यकता नही । आज तेरी बदनामी करने वाले कल तुझे कीर्ति का तिलक लगाने आयेगे । आज तेरी निन्दा करने वाले कल तेरे नाम का जयजयकार करेंगे । अधीर मत बन । सन्मार्ग पर निर्भयता पूर्वक चलता चल । अरिहंत देव तेरी रक्षा करेंगे ।

१७ मनोरथ

अपने भविष्य की निश्चित जानकारी तुम्हें नहीं है। ऐसी स्थिति में भविष्य सम्बन्धी झूठी सच्ची कल्पनाएं करके रागद्वेष में पड़ना उचित नहीं।

कई शुभ विचार भी पर मालूम होते हैं अतः बार बार ऐसे विचार करने में चित्त की प्रसन्नता नादारद हो जाती है।

तुम तो अपनी आत्मा को निर्भयता प्रदान करने वाले मनोरथ ही करना चाहिये। पराधीन बनाने वाले मनोरथ करने योग्य नहीं।

परन्तु यह जीवन ही ऐसा है। इसलिये ऐसे विचार भी यदि सफल न हों तो उद्विग्न मत होना।

११८. तू अपने दोष देख

तू इस विश्व को किस दृष्टि से देखता है, इसी बात पर तेरे चित्त का सुख निर्भर है।

तू दु:खी है? तो तू अपनी दृष्टि में सुधार कर! 'दोष' की फास चुभ गई हो, जिसकी की पूरी सभावना है, तो उसको बाहर खीच ले। मन मे जमा हुआ दु:ख का हिमालय पिघल जायगा.........

जहाँ तक स्वय को सुधारने का प्रयोग चले, तब तक तू जगत् के किसी जीव के दोषों को मत देख। दोष देखने का प्रयोग मत कर। दूसरो के दोष देखने के पहिले तू स्वय निर्दोष बन।

जगत् के बहुत से जीव दूसरों के दोष देखने के काम मे लगे हुए है, तू यह काम न करे तो भी चलेगा। अरे! तुझे तेरे दोष देखने वालों के भी दोष देखने की आवश्यकता नही।

तू अपने खुद के ही दोष नही देख पाता, देख भी ले तो उन्हे दूर नही कर सकता। ऐसी स्थिति मे दूसरो के दोषो को देखने की आदत तुझे दु:ख के ज्वालामुखी मे ढकेल देगी।

११६ अविकारी स्वरूप

दूसरे का दोष तब अधिक चिन्ता का कारण बनता है, जबकि वह तुझे नुकसान कारक प्रतीत होता है। विचार करके देख तुझ भी यह सत्य जान पड़ेगा। तब हम व्याकुल हो जाते हैं लेकिन जब पराया दोष अपने को नुकसान करता नहीं दिखाई देता, तब हम उसको साधारण समझकर या उस व्यक्ति को करुणा का पात्र समझ कर चुप रहते हैं।

'परिहर पर चिन्ता परिवारम' यह उपदेश देकर पूज्य उपाध्याय श्री विनय विजय जी महाराज इस पर अमल करने का उपाय भी बताते हैं—

'चिन्तय निज विकारम्' अर्थात् तू अपने अविकारी स्वरूप का ही विचार कर। विचार का ऐसा अनन्त क्षेत्र हमको प्राप्त है कि जिन्दगी भर उस पर ही विचार करते रह सकते हैं

फिर पर दोष अपने को नुकसान कारक नहीं बनेंगे।

१२०. परहित की प्रवृत्ति

परहित मे प्रवृत्ति वही तक करना चाहिये कि जहाँ तक तेरे आत्महित को हानि न पहुँचे, परन्तु हित मे लगकर बाह्य नुकसान की परवाह भी मत करना। हाँ, तेरी अपनी आत्मा को हानि न पहुँचे, इसकी चिन्ता जरूर रखना।

परहित करते हुए कभी-कभी अभिमान मे वृद्धि होती है; कभी सम्मान की आकांक्षा तीव्र होती है; कभी दृष्टि दोष तो कभी दोषदृष्टि जागृत हो जाती है: कभी शील और सदाचार के भग तक का भय पैदा हो जाता है। इन सब हानियों को धकाया नही जा सकता, इसलिये सदैव जागते रहना चाहिये। ऐसी हानियो की शका होते ही परहित की प्रवृति बन्द कर देनी चाहिये।

परहित के लिए दूसरे के सम्पर्क मे आना पड़ता है। अत. इस संयोग की मर्यादाओ का लक्ष्य नही चूकना चाहिये। अगर यह लक्ष्य भुला दिया गया तो स्व-पर का हित नही, बल्कि अहित हो जायगा।

१२१. गुप्त भंडार

तू जिसकी खोज बाहर कर रहा है, उसकी खोज खुद में कर के देखा है ? जो तेरे पास है, वह दूसरी जगह कहाँ मिलेगा? उसकी खोज दूसरी जगह करने पर तो केवल खेद, क्लेश और सन्ताप ही मिलेंगे। तुझे तेरे गुप्त भण्डार की खोज करनी होगी। उसके मार्गों को भी तुझे ही ढूंढ निकालना पड़ेगा। ये मार्ग बड़े अटपटे और भ्रम में डालने वाले होंगे, परन्तु यदि तू निराशा को लेश मात्र भी स्थान दिये बिना, आगे पुरुषार्थ करता रहेगा, तो निश्चित ही इन गुप्त भण्डारों में पहुँच जायगा।

फिर तो तेरे आनन्द की सीमा न रहेगी। इन गुप्त भण्डारों में ही तुझे इतना अधिक प्राप्त होगा कि वापिस बाहर आने की या बाहर झांकने की पल भर भी इच्छा नहीं होगी। बहिर्जगत में परिभ्रमण अब बन्द कर और अपने आन्तर प्रदेश की ओर लौट। यह प्रदेश अनन्त है आह्लादक है। उस प्रदेश की खोज निकालना ही कठिन है, फिर तो बस, आनन्द ही आनन्द है।

१२२. विचारों का चिन्तन

प्रखर आपत्तियों के समय जिन महापुरुषों और महासतियों ने समता व समाधिपूर्वक अपने जीवन को सन्तुष्ट बनाये रखा था, तू उनके मनोबल का विचार कर। उन्होंने अपने मन को कितना मजबूत बनाया होगा! उन्होंने विचारों की किस विद्युत् शक्ति से मन को गतिशील रखा होगा!

उन विचारों का चिन्तन करते हुए यदि तुझे उनका रहस्य समझ में आ जाय तो समझ ले तेरा कार्य सिद्ध हो गया।

रामचन्द्र जी ने जब सगर्भा सीताजी को वन मार्ग में चलने के लिए मजबूर किया, अजना को उसकी सास केशुमती ने सगर्भा स्थिति में ही जंगल के मार्ग में ढकेल दिया, नल ने घोर अटवी में दमयन्ती का त्याग किया ... तब किस शक्ति के आधार पर वे महासतियाँ अपने जीवन को टिका सकी थीं? मन को उन्होंने किस प्रकार दारुण, शोक, उद्वेग और मृत्यु से बचा लिया?

१२३. कल्पना की कला

दुःख ? तू दुःखी है ? कल्पना, केवल कल्पना है ! दुःख और सुख तो तेरी अपनी कल्पना की सृष्टि मात्र है।

यदि तू दुःख की कल्पना ही न करे तो ? उस कला को हस्तगत कर लेने वाला संसार में कभी भी दुःख नहीं देख सकता ! फिर दीन होने की तो बात ही कहाँ ?

जब भी कोई प्रसंग, व्यक्ति अथवा पदार्थ तेरे चित्त में अप्रसन्नता लाने लगे तो तू उन प्रसंग आदि को इस विचार से देख कि ये तो आगे किसी सुख के लिए हैं। तेरी कल्पना सुख की बन जायगी।

तू इस बात पर स्वच्छ चित्त से विचार करना। यह बहुत कठिन नहीं है। थोड़ा मानसिक श्रम करेगा कि तुझे यह कला हस्तगत होने लगेगी।

जीवन में रचनात्मक कुछ विचार करेगा तो सफल होगा। केवल भावनाओं के घोड़ों से, कि जिन पर आरोहण नहीं किया जा सकता, काम नहीं बनता। जीवनोपयोगी इस कला को हस्तगत कर ले।

१२४ परमात्मस्मरण

जिनकी अनन्त करुणा से तू श्वास ले रहा है, जिनकी अगम-अगोचर कृपा से ही तू इस मनुष्य के रूप मे जी रहा है, उस परम कृपानिधि परमात्मा का तेरे पर क्या कम उपकार है? अनन्त उपकार को करने वाले परमोपकारी का स्मरण तेरे चित्त में तू बारबार करता है? नही?

तो फिर अभी तू योग मार्ग पर नही आया, ऐसा समझ। योग के मार्ग मे आरूढ आत्मा परमात्मा का बार-बार स्मरण करती है। प्रत्येक प्रसग प्रवृत्ति के साथ पर-मात्मा का कोई न कोई सम्बन्ध रहा हुआ है। तू उस सम्बन्ध को खोज कर परमात्मा को स्मृति पटल पर ला।

अपने को उस परम कृपालु ने इतना अधिक दिया है कि अब नया कुछ उनसे मांगने में भी शर्म आनी चाहिए।

का सुख स्थायी रूप से क्यों नहीं टिकता है ? स्थायी रूप से टिके ऐसा सुख संसार में कहाँ मिलता है ?

तू इन दो प्रश्नों पर विचार करना, फिर यदि इनका प्रत्युत्तर न मिले तो किसी ज्ञानी गुरु को ढूंढना ।

१२६ सत्य

सत्य सत्य है। जीवन में जब सत्य की आवश्यकता महसूस होती है और सत्य को स्वीकार किये बिना, जीवन कलुषित बन जाता है। तभी सत्य का वास्तविक स्वरूप समझ में आता है।

मैंने उसे जब वह सत्य बतलाया तब उसने असत्य कह कर उसकी अवगणना की थी। कारण कि तब उसे उस सत्य की जरूरत न थी। परन्तु आज उसे जब उस सत्य के अभाव में अटपटापन महसूस हुआ। तब उसने उस सत्य को चुपचाप स्वीकार कर लिया।

कोई भी बात किसी के लिए किसी काल विशेष की भूमिका का सत्य होता है। उस काल की भूमिका आने पर ही वह सत्य समझ में आता है, दूसरे समय में वह असत्य प्रतीत होता है। इसलिये किसी की भी बात को असत्य मानकर अवगणना करने के पूर्व, विचारना चाहिये कि उसकी वह बात किस काल भूमिका से सम्बन्धित है। तभी सत्य प्रकाशित होगा।

१२७. उपदेश

उसको अपना जीवन सुधारना नही है।

जैसा जीवन वह अभी जी रहा है, वही उसे प्रिय है, फिर उसके लिए तू क्यो व्यर्थ मे खेद करता है ?

भले ही तुझे उसका जीवन पसन्द न हो, लेकिन उससे तू उसके जीवन मे कोई सुधार नही कर सकता। इस तरह सुधार करने पर तो वह तेरे प्रति भी द्वेषी हो जायगा। जो तुझे उपदेश सुनाने की प्रार्थना करते है, और तेरे सहारे ही जो जीवन-परिवर्तन करने की भावना रखते है, उनको ही तू उपदेश दे। बाकी लोगो को तेरा उपदेश प्रकोप का कारण बनेगा।

तेरा जिनके साथ सम्बन्ध है, तेरे पर जिनकी जवाबदारी है, उनको भी उपदेश मर्यादित ही देना। सचमुच ! स्वयं को मूर्ख मानने वाले परन्तु अन्त करण से जानकर ही गुरु के उपदेश को प्रेम से और उत्कण्ठा से सुन सकते है। आज स्वय को मूर्ख मानने वाले कितने है ? और स्वय को सर्वज्ञ मानने वाले कितने है ?

१२८. करुणा

तेरे द्वारा किसी जीव को पीड़ा हुई दुःख पहुँचा अथवा मृत्यु हो गई, तो यह देख कर तेरे मन में क्या विचार आता है ?

अरे, मैंने पाप किया, भवान्तर में मुझे इस पाप का फल भोगना पड़ेगा, इसलिये लाओ प्रायश्चित कर डालूँ यदि साधु जीवन की भूमिका में से तेरे मन में इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ और उसके बाद में उसके बारे में कोई दूसरा विचार न आवे तो यह बहुत ही शोचनीय माना जायगा।

यद्यपि तेरे द्वारा अनजान में ही उस जीव को पीड़ा पहुँची, दुःख हुआ या मौत हो गई तो भी यह देखकर तेरे दिल में कपकपी, धूजनी छूट जानी चाहिये।

अहो, मेरे प्रमाद के कारण इस जीव को दुःख हुआ पीड़ा पहुँची '—स जीव के दुःख से दुःखी हो जाना की उसकी पीड़ा में पीड़ा अनुभव कर लेने की भूमिका प्राप्त कर लेना चाहिये। तुझ दुःख तेरे पाप के कारण आने वाले दुःख व भय से नहीं, बल्कि सामने वाले जीव की पीड़ा के कारण अनुभव करना चाहिये।

१२९. स्वरूप का राग

जिस पर तुझे राग है, यदि उसका वियोग हो जाय अथवा वह तुझसे नाराज हो जाय, तब तू दुःखी मत होना, अशान्त मत होना।

तू अपने स्वरूप से सब से भिन्न है। स्वजनों से तू भिन्न है, परिजनों से भिन्न है, वैभव से भिन्न है, अरे! अपने शरीर तक से तू अलग है! तो फिर क्यों इन सब की खातिर तू खेद करता है? जो तू नहीं, जो तेरे नहीं वे कभी तेरे होने के नहीं, यह तू निश्चित समझले।

तू अपने स्वरूप का रागी बन। आत्म-स्वरूप का रागी बन। आत्मा की स्वभाव दशा का रागी जीव आत्मा की विभाव दशा में हर्ष शोक नहीं करता।

विभाव दशा के तो ज्ञाता-द्रष्टा बनने में ही आनन्द है, शान्ति है। तेरे स्वरूप का रागी बनने के लिए परमात्मराग जाग्रत कर। जैसे-जैसे परमात्म प्रीति दृढ़ होती जायगी, वैसे-वैसे स्वरूप के प्रति राग भी बढ़ता जायगा।

१३० परमसुख

प्रत्येक मनुष्य के विचारो के पीछे भी उसके कर्मो की प्रेरणा होती है। उसके विचार तुम्हारे विचारो के प्रतिकूल हो, तो उसमे उसका कोई दोष नही, उसके कर्म दोषी है।

दृष्टि को इस प्रकार से प्रशिक्षित किये बिना चित्त को शान्ति प्राप्त नही होने की। इसीलिए श्री विनय विजय जी महाराज कहते है—

"पश्यसि किं न मन परिणामम।
निज निजगत्यनुसार रे

तेरी दृष्टि इसी पर जमा। परम से सुख का अनुभव करने को मिलेगा। इसके सिवाय विद्वत्ता या तपश्चर्या से भी तुझे परमसुख नही मिलने का।

तू अपने दृष्टिकोण मे परिवर्तन कर दे। विद्वत्ता या अन्य बाह्य उपासनाओ से सुख प्राप्त करने की तृष्णा छोड दे। अब तू भावना ज्ञान की तरफ मुड, जहाँ परम सुख का पाताल स्रोत विद्यमान है।

१३१. जीवन परिवर्तन के लिए

दूसरे जीव को धर्म प्राप्त कराने के पूर्व तुझे यह छानबीन कर लेना चाहिये कि इस जीव को तेरे प्रति द्वेष तो नही। तेरे पर उसका राग है या नही ?

अगर तुझे मालूम पड जाय कि उसके मन मे तेरे प्रति द्वेष है, तो तुझे उस द्वेष को मिटाने का प्रयत्न करना और तेरे प्रति वह अनुरागी बन जाय इस तरह उसके साथ बर्ताव करना चाहिये। बस, फिर तू जो भी धर्म प्राप्त कराना चाहेगा, उसे सरलता से वह प्राप्त करा सकेगा।

परन्तु दूसरे का द्वेष दूर करने के लिए तुझे धैर्य से काम लेना पड़ेगा, उतावली से काम नही चलेगा। जैसे-जैसे उसके द्वेष मे कमी आती जायगी, उसका तेरे प्रति अनुराग भी बढता जायगा। उसका द्वेष दूर करने के लिए तुझे उसके प्रति भावकरुणा का विचार करना चाहिये, ताकि उसको लगे कि तू उसको चाहता है।

दूसरो के जीवन परिवर्तन के लिए इतना तो करना ही पड़ेगा।

१३२ विश्व दर्शन

तेरी आँखों के सम्मुख जगत् के आकार

जड़ पदार्थ आते हैं उनको तू केवल ऊपर ही ऊपर से देखेगा तो तेरे राग द्वेष में वृद्धि होगी, परन्तु यदि तू इन रचनाओं—जड़ पदार्थों को आध्यात्मिक दृष्टि से देखेगा इनमें से कोई सनातन सत्य ढूंढने का प्रयत्न करेगा, तो राग द्वेष से परे अपूर्व आनन्द का अनुभव कर सकेगा।

चन्द्रमा को तूने कितनी बार देखा होगा पर क्या तूने चन्द्रमा से किसी सत्य को प्राप्त किया? चन्द्रमा समस्त संसार को प्रकाश और शीतलता प्रदान करता है। उसके प्रकाश में लाखों, करोड़ों जीव आनन्द की अनुभूति करते हैं लेकिन जब यह चन्द्रमा राहु से ग्रसित होता है तब इन लाखों करोड़ों जीवों में से कोई भी उसे राहु से मुक्त करने के लिए नहीं जाता। प्रयत्न भी करते। फिर भी चन्द्रमा उन जीवों पर रोष नहीं करता और राहु से जैसे जैसे मुक्त होता जाता है वैसे-वैसे फिर जगत को प्रकाश—आनन्द प्रदान करना प्रारम्भ कर देता है।

मनुष्य दूसरों पर उपकार करता है, लेकिन वह अपने द्वारा उपकृत जीवों से, प्रत्युपकार की अपेक्षा रखता है! जब उन जीवों की ओर से सहायता नहीं मिलती अथवा वे उसके प्रति द्वेषी बन जाते हैं, तो उसके मन में परोपकार की वृत्ति नहीं जागती।

चन्द्रमा कहता है, "तुम अपना कर्तव्य करते जाओ, सामने वाले से बदले की आशा छोड़ दो।"

कहो, यह सत्य कितना जीवनोपयोगी और अपूर्व है? इस प्रकार प्रत्येक पदार्थ का निरीक्षण करते-करते नया-नया रहस्य प्राप्त होता जायगा।

१३३. जगत् के प्रति दृष्टि

विवेक शून्य.. औचित्य शून्य मनुष्यो के उटपटाग वचनो को सुनकर तू क्या विचार करता है ?

पागल मनुष्यो के दवाखाने मे डाक्टर पागल मनुष्यो को किस दृष्टि से देखता है ? किस दृष्टि से उनकी बात सुनता है ?

"बिचारा, पागल है ' यह दृष्टि डॉक्टर के हृदय मे द्वेष नही जगने देती। तुझे भी जगत के अज्ञानी जीवो के प्रति ऐसी कोई दृष्टि प्राप्त करनी चाहिए।

"बिचारा, अज्ञान है

बस, इतना विचार करेगा तो तेरे हृदय मे अशान्ति, उद्वेग पैदा नही होगे। ससार में पागलो की सख्या अधिक है। मोह—अज्ञान का रोगजीव को पागल बनाता है, फिर भी यह जीव स्वय तो अपने आपको महान् बुद्धिमान् ही मानता है। यदि वह अपने को पागल माने तो पागल कहलाय ही क्यो ?

१३४. अविनीत के प्रति

अविनीत व्यक्तियो के अविनय को सहन करने मे तुझे तो लाभ ही है...तू रोष मत कर। तेरे रोष प्रकट करने मात्र से वे विनीत नही हो जायेंगे। सर्वत्र औचित्य का पालन का गुण आत्मा मे तभी पैदा होता है, जबकि उसके भावमल का अत्यधिक क्षय हो गया हो और जीव चरमावर्त मे पहुँच गया हो।

तेरे हृदय मे तो वैसे जीवो के प्रति भाव करुणा ही रहना चाहिए। उनको ज्ञान दृष्टि प्राप्त होगी, तब स्वाभाविक रूप से वे औचित्य का पालन करने वाले हो जायेंगे। ऐसे जीवो के प्रति यदि तेरा कोई कर्तव्य है, तो वह केवल एक ही है कि '**किस प्रकार उनकी ज्ञानदृष्टि को खोलने में निमित्त बना जाय।**'

इसके सिवाय तो उनके प्रति उदासीनता ही रखना चाहिये। क्यो पराई चिन्ता मे तुझे अपना प्रशम सुख गवा देना चाहिये ? अपने प्रशम सुख को कायम रखकर ही जितनी बन सके उतनी परहित चिन्ता करना चाहिये, अपने प्रशम सुख की बलि देकर नही।

१३५ बुद्धि और हृदय

महापुरुषो के हृदय तक जब हमारी बुद्धि पहुँचती है, तब बुद्धि ठिठक जाती है और हृदय नाच उठता है।

महापुरुषो के सत्कार्यों के पीछे उनके जो भाव जाग्रत होते हैं उन भावो का जब भावना भरे हृदय मे विचार करते है तब ऐसा अकृत्रिम और अपार आनन्द का अनुभव होता है कि जो वर्णनातीत है।

परन्तु महापुरुषो के हृदय तक अपने हृदय को ले जाने के लिए वाहन अपेक्षित है और वह वाहन है—बुद्धि निर्मल बुद्धि। निर्मल बुद्धि के वाहन पर आरूढ होकर अपना हृदय महापुरुषो के हृदय-द्वार तक पहुँच सकता है।

बुद्धि और हृदय इस प्रकार काम करने लग जाय तो बस! फिर सुख शांति और आनन्द की कोई सीमा न रहे।

१३६. मैं क्या दूं ?

त्रिलोकनाथ !

मै आपके द्वार पर याचना के लिए उपस्थित हूँ। आपसे याचना करता हूँ कारण कि भव की गलियों मे भटकता मैं भी भिखारी हूँ। अतः मै याचना करू, उसमे अनुचित कुछ नही...परन्तु यह तो एक महान् आश्चर्य कि आप मुझ से याचना करते है!

'भिक्षा देहि'
नाथ मै तो भिखारी हूँ.
'भिक्षां देहि'
मेरे पास कुछ भी नही...
'भिक्षा देहि'

मै बडी पशोपेश मे हूँ....क्या दू, मैं आपको ? क्या भिखारी के आंगन मे भीख मागी जा सकती है ? प्रभो ! मुझे लज्जित न करे। मै याचना करू, उसमे मैं लज्जित नही हूँ . लेकिन जब आप याचना करते हैं, तब शर्म से मै गड-गड जाता हूँ।

'भिक्षा देहि'

आखिर, देने के लिए मैने अपने घर मे खोज शुरू की....एक टुकडा मिला....प्रेमका ....भक्ति का !